अमरवाणी

संग्रहकर्त्ता पं० आनन्दी प्रसाद मिश्रा 'निर्द्वन्द'

संसार के महात्माओं के अमर वाक्यों का संक्षिप्त संग्रह, जिसमें श्री-कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, मनु, व्यास, चाणक्य, शंकराचार्य, तुलसीदास, कालीदास, मीराबाई, रामतीर्थ, विवेकानन्द, दयानन्द, तिलक, गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, आचार्य ध्रुव, लाजपतराय, जवाहरलाल नेहरू, सरोजनी नायडू, सुकरात, शेखसादी, लुक्मान, शेक्सपियर, टाल्सटाय, कार्ल-मार्क्स, मेक्सनी, मेज़नी, मौलियर, एन्डयूज, रस्किन, नैपोलियन, जान-स्टुअर्ट मिल, गेरीबाल्डी, इब्राहिम, लिकंन, गेटे, रूसो, लोगफैलो, ह्युअन-सांग, एमसंन, गोल्डस्मिथ, गोर्की, किगंस्ले, आदि अनेक महापुरुषों के निजी जीवन के निचोड़ हैं। मूल्य केवल ।॥=) आ०

प्रेमोपहार—
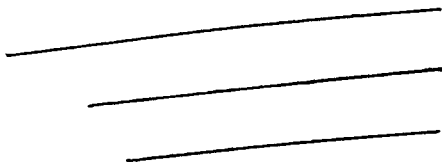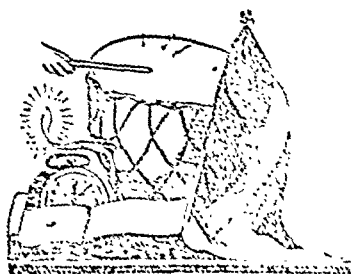
वर्तमान युद्ध
में
पोलैण्ड का बलिदान

भूमिका

गत युरोपीय महासमर के समाप्त होने के ठीक बीस वर्ष पश्चात युरोप में पोलैण्ड के युद्ध के साथ ही एक दूसरे महा युद्ध का भी गणेश होगया है। यदि आरम्भ में उसका रूप बहुतों को इतना व्यापक नहीं मालूम होता था; पर पोलैण्ड की लड़ाई समाप्त-प्राय होने के समय जब रूस ने भी अपने देश-बन्धुओं के हितार्थ उसमें भाग ले लिया तो संसार को यह निश्चय हो गया कि यह युद्ध स्थानीय न रह कर व्यापक हो जायगा और धीरे २ युरोप की सभी शक्तियां इसमें भाग लेंगी। आज हम देख रहे हैं कि युद्ध पोलैण्ड तक ही न समाप्त होकर फिनलैण्ड को भी समाप्त करने जा रहा है और सम्पूर्ण बीरिया,

तुर्की और मिश्र में मित्रराष्ट्रों ने जो सैनिक तयारियां कर रखी हैं उससे आश्चर्य नहीं कि यूरोप और एशिया दोनों में ही इसकी प्रबल आग धधक उठे। इस दृष्टि से देखें तो पोलैण्ड का युद्ध गत युरोपीय-महासमर से भी अधिक महत्व रखता है।

पोलैण्ड का संघर्ष पढ़ कर आप वर्तमान युरोपीय महायुद्ध के मूल कारणों को समझ जायगें। वास्तव में यह दुर्धर्षतर भावी महायुद्ध का प्रथम अध्याय है। पाठकों की सुविधा की दृष्टि से इस संघर्ष के पहले पोलैण्ड का संक्षिप्त इतिहास भी जोड़ दिया गया है जिससे वर्तमान घटनावली समझने में अधिक आसनी हो।

आशा है पाठक इस पुस्तक द्वारा वर्तमान युद्ध के सब से भयानक संघर्ष की झलक पा लेंगे और युद्ध के भावी भीषण स्वरूप की भी रूपरेखा देखने के लिये अपने को तैयार कर लेंगे।

लेखक

प्रकाशक का निवेदन

पोलैण्ड का युद्धेतिहास वर्तमान
यूरोपीय महायुद्ध का भी गणेश है।
इससे पाठक संघर्ष आरम्भ होने का
कारण; युद्ध की स्थिति; उसका परि-
णाम और समस्त यूरोप तथा संसार
पर पड़ने वाले उसके इतिहास की
झांकी ले सकेंगे। यदि उन्हें हमारा
यह प्रयत्न पसन्द आया तो हम अवश्य:
फिनलैण्ड तथा भविष्य में इस संघर्ष
के सिलसिले में छिड़ने वाले अन्य
युद्धों का वर्णन भी पुस्तकाकार प्रका-
शित करेंगे।

प्रकाशक

वर्त्तमान युद्ध में पोलैण्ड का बलिदान

कहां है?　　　　　　　　　　　　　　　　पृष्ठ संख्या

पोलैंण्ड तब और अब

अनन्त विश्व-ब्रह्माण्ड में राष्ट्र का उत्थान और पतन बच्चों का सा खेल है- वह आये दिन होता रहता है और उसके लिये कितने ही प्राणी होम होते रहते हैं। एक तत्वज्ञानी ऐसी घटनाओं पर केवल मुस्करा कर रह जायगा और इसे विश्व-नियन्ता की एक चुटकी-मात्र समझेगा; किन्तु हम सांसारिकों के लिये ऐसी घटनायें सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं; क्योंकि इससे उत्थान या पतन को प्राप्त राष्ट्र के करोड़ों व्यक्तियों का जीवन संलग्न होता है।

संसार से बड़े-बड़े साम्राज्यों और सभ्यताओं के नाम मिट चुके हैं और आज नये-नये राष्ट्र और सभ्यताएँ पनप और लहलहा

रही हैं। विश्व रंग-मंच का खेल ही ऐसा है। ऐसी अवस्था में पोलैण्ड के पतन जैसी हाल की एक घटना का विश्व-सागर की एक लहर से अधिक महत्त्व नहीं रह जाता। किन्तु प्रकृति के नियमानुसार एक का ह्रास दूसरे के विकास का कारण बनता है मानव जीवन में संघर्ष का मूल्य अत्यधिक होता है—उसमें चाहे सफलता मिले या विफलता, उसकी गाथा सुनने की उत्सुकता सब में ही होती है।

* * * *

दार्शनिक और प्रकृतिवादी कुछ भी कहें, किन्तु आधुनिक युग में पोलैण्ड के निपात का एक विशेष महत्त्व है। इससे यूरोप के विरोधी राष्ट्रों के सन्तुलन में एक नया ही बाट तराजू के पलड़े पर रख दिया गया है। यही नहीं, पोलैण्ड-विजय के साथ ही जर्मनी ने वह काम कर दिखाया है जिससे पश्चिमी यूरोप के साम्राज्यवादी विश्व-शोपक राष्ट्र मात हो गये हैं। ठीक समय पर जर्मनी ने रूसके साथ जो अप्रत्याशित सन्धि करली है और जिसके परिणाम-स्वरूप जर्मनी और रूस दोनों ही ने पोलैण्ड में अपने अपने समुचित एवं किसी काल में अधिकृत प्रदेश ले लिये हैं, वह आज मित्र राष्टों के हृदय में काँटे की भाँति चुभ रही है। यही नहीं, जिस पोलैण्ड को सहायता का आश्वासन देकर बृटेन और फ्रांस ने कई सौ मील दूर से ललकार-ललकार कर धूल में मिलवा दिया, उसी के कारण आज पश्चिमी मोर्चे पर फ्रांस और बृटेन

अपने तथा अपने साम्राज्य-साधनों की बलि दे रहे हैं और फिनलैण्ड जैसा नगण्य देश रूस जैसी महान् शक्ति से लड़ते रहने का साहस दिखा रहा है। जो हो, संसार का परिवर्तन-चक्र अब धीरे धीरे वह समय ला रहा है जब विश्व-प्रपीड़क और शोषक जातियाँ अपने मार्ग की कठिनता का अनुभव करने लगी हैं। यह स्पष्ट बात है कि कल तक संसार को उंगलियों के इशारे पर नचाने वाला बृटेन आज अपनी साम्राज्य-रक्षा की ख़ैर मना रहा है और अपना अस्तित्व भी उसे खतरे में दीख रहा है। इस दृष्टि से विचार करने पर पोलैण्ड के युद्ध का परिणाम व्यापक और दूर तक पहुँचने वाला हुआ है। अभी उसकी प्रतिक्रिया चालू ही है और राजनीतिज्ञों को आशंका है कि पोलैण्ड में लगी हुई आग संसार को और मुख्यतः यूरोप को शीघ्र न ठण्डी होने देगी।

* * * *

अस्तु, हमें भावी जगत् की सम्भावित गति-विधियों पर न विचार करके उस पोलैण्ड के पूर्वेतिहास के साथ-साथ उस युद्ध के कारण, रूप और फल की झलक पाठकों को दिखानी है जिसको आधुनिक जर्मनी की वैज्ञानिक अस्त्र शस्त्र पूर्ण एवं युद्ध कला विशारद सेनाओं ने अठारह दिन में प्रबल तूफ़ानी वेग से इस प्रकार जर्जर कर दिया कि वहाँ की नामधारी सरकार को अपना अस्तित्व बचाये रखने के लिये कागज-पत्र तथा सोना-चाँदी एवं

जवाहरात लेकर रूमानिया में भाग कर शरण लेनी पड़ी। यद्यपि संसार भर के समाचार पत्रों से मूल्य वसूल कर उन्हें समाचार पहुँचाने का एकाधिकार बृटेन की कृपा से 'रायटर' को प्राप्त है और वह बृटेन विरोधी राष्ट्रों की जीत का हाल बताने में जिस कंजूसी और कौशल से काम लेता है वह दैनिक समाचार पत्रों के पाठक भली भाँति जानते हैं; किन्तु फिर भी जो कुछ थोड़े-बहुत विदेशी पत्र-पत्रिकायें भारत में आती हैं उनसे तथा जर्मन, अमेरिका तथा रूस के रेडियो से कभी-कभी जो समाचार सुनने में आते हैं उनसे वस्तुस्थिति कुछ और ही प्रतीत होती है और कभी-कभी तो—

उभरे अन्त न होय निबाहू, कालनेमि जिमि रावन-राहू ।

के अनुसार 'रायटर' के सदा-सजग सम्वाददाताओं की लेखनियों से भी परस्पर-विरोधी खबरें इस प्रकार निकल जाती हैं जिनसे सत्य की झलक समाचार के लिये उद्ग्रीव पाठकों को मिल ही जाती है।

* * * *

उपर्युक्त स्थिति के कारण युद्ध की वास्तविक स्थिति का वर्णन हमारे लिये एक प्रकार से अशक्य ही है; किन्तु फिर भी कभी-कभी यत्र-तत्र पोलैण्ड के तूफ़ानी युद्ध का परिचायक जो सच्चा मसाला देशी विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होता रहा है उनका संकलन कर हम पाठकों की उत्सुकता शान्त करने का

प्रयत्न करेंगे। युद्ध के विवरणों के साथ पोलैण्ड का प्राचीन एवं पूर्ववर्ती इतिहास देकर पाठकों को इस बात से अवगत कराने का प्रयत्न किया गया है कि वास्तव में पोलैण्ड था क्या, और किस प्रकार वहाँ युद्ध के बहुत पहले ही विभिन्न और परस्पर-विरोधी शक्तियाँ काम कर रही थी।

पोलैंड का इतिहास

मध्य यूरोप में पोलैण्ड बहुत प्राचीन समय से एक महत्व पूर्ण देश रहा है। पश्चिम में जर्मनी और पूर्व में रूस से मिलने के कारण इस देश की भौगोलिक स्थिति कुछ ऐसी है कि उस में अन्य देशों के प्रवासियों का आकर बस जाना एक स्वाभाविक बात है। पोलैण्ड हरे-भरे मैदानों और खेतों का देश है। और बातों में न सही, पर दो बातों में तो पोलैण्ड भारतवर्ष से मिलता-जुलता है; इन में पहली बात है पोलैण्ड की कृषि-प्रधानता और दूसरी है पारस्परिक फूट। जिस प्रकार हिन्दुस्तान आपसी फूट के कारण लगभग हज़ार वर्षों से विदेशियों की परतन्त्रता बेड़ी

जकड़ा हुआ है उसी प्रकार पोलैण्ड के राजनीतिज्ञों ने भी
राने जमाने से ही समय-समय पर उसे विदेशियों का अधीनस्थ
नाने और उसका अंग-भंग करने में ही अपने कर्त्तव्य की इति-
ी करदी है। अगले पृष्ठोंसे पाठक समझ सकेंगे कि किस प्रकार
लैण्ड के ही निवासियों ने विभिन्न समयों पर अपने देश को
देशियों के हाथ बेचने में कुछ भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई
ौर इस प्रकार शनैः शनैः उसे वर्तमान दुःखद अवस्था को
हुँचा दिया।

कुछ इतिहासकारों और राजनीतिज्ञों का मत है कि पोलैण्ड
भी एक स्वतन्त्र देश था ही नहीं—उसका अस्तित्व-निर्माण ही
स, जर्मनी तथा उत्तर और दक्षिण सीमाओं के राज्यों के टुक-
ड़े होने पर हुआ था; किन्तु पोलों की संस्कृति और सभ्यता
था कला-कौशल के ज्ञान ने उन्हें यूरोप के अन्य बड़े राष्ट्रों का
मकक्ष बना दिया और उन्होंने उद्योग-धन्धों में भी पर्याप्त उन्नति
कर तथा विदेशों से [illegible] किया कर इतना
पने देश को एक विशिष्ट एवं पृथक् राष्ट्र बना लिया।

पोलैण्ड की एकता और संगठन में बाधा पड़ा और साहसी राजा बोलसलाज़ ने अपने शौर्य एवं कौशल से उसे सँभाला। बारहवीं सदी में फिर एक बार पोलैण्ड चमका और उसका विस्तार बाल-टिक समुद्र तट तक हो गया। किन्तु इस वंश के अन्तिम राजा ने सारा देश अपने चार पुत्रों में विभाजित करके उसका सर्वनाश कर दिया और उसकी एकता और राष्ट्रीयता को ऐसी भारी क्षति पहुंचायी कि दो सदी तक पोलैण्ड सिर ऊपर न उठा सका।

चौदहवीं शताब्दी में जेक-राजा वेन्सेसलाज़ के शासन के पश्चात् पोलैण्ड के भाग्य फिर चमके और १३२५ ई० में फिर एक पोल राजकुमार को अधिकार प्राप्त हुआ। यहाँ यह बता देना अप्रासांगिक न होगा कि पलो और जर्मनी की दुश्मनी पुश्तैनी है। पोलैण्ड-वासी रूस, प्रशिया, आस्ट्रिया और जेकोस्लवाकिया आदि सब से मित्रता की आशा कर सकते हैं; किन्तु जर्मनी के वह जानी दुश्मन और परम्परागत शत्रु हैं। इसका कारण सम्भ-वतः यही है कि एक अर्से तक पोलैण्ड को जर्मनी के शासनान्त-र्गत रखने का प्रयत्न किया गया था। १३३५ ई० में पोलैण्ड के राजा ने सिलीसिया प्रदेश बोहोमिया को समर्पित कर दिया। इन दिनों पोलैण्ड में धर्माचार्यों का अत्यधिक प्रभाव था। खृष्टान धर्म के पाश्चात्य अनुयायियों का केन्द्र था रोम। पोलैण्ड ने भी रोम से ही धार्मिक प्रेरणा प्राप्त की थी। इसके विपरीत रूस को खृष्टान-धर्म की प्रेरणा कुस्तुनतुनिया से प्राप्त हुई थी जो अपेक्षा-कृत अधिक अनुदारता मूलक थी। विस्तार-भय से पोलैण्ड की

राजनीति पर धार्मिक-मठों और धर्माचार्यों के प्रभाव का वर्णन यहां नहीं किया जा सकता, किन्तु इतना बतला देना आवश्यक है, कि कभी-कभी धर्माचार्यों ने इस देश को विदेशियों के प्रभुत्व में लाने का गर्हित प्रयत्न अवश्य किया। यह कठिनाइयाँ होते हुये भी चौदहवीं सदी पोलैण्ड के लिये महाप्रसाद सिद्ध हुई, क्योंकि १३३३ ई० से १३७०ई० तक वहाँ एक ऐसे शासक ने राज्य किया जिसकी महानता सर्व-विदित हो गई। उसने देशको संगठित और समृद्ध बनाने के लिये अपूर्व उद्योग किया। किसानों और मजदूरों से उसकी इतनी अधिक सहानुभूति थी कि प्रजाने उसे 'किसान राजा' के नाम से विख्यात कर दिया। उसका नाम था कासीमीर। उसने राज्य के आर्थिक साधनों का विकास किया और भूमि का लगान सुव्यवस्थित कर राज्य और प्रजा दोनों ही के लिये हितकर कार्य किये। उसने देश के क़ानून में भी पर्याप्त सुधार किये और विदेशियों की दृष्टि में पोलैण्ड का सम्मान बहुत बढ़ा दिया। क्रेकाऊ विश्व-विद्यालय की स्थापना भी उसी ने की, जो आगे चलकर पोलैण्ड की सांस्कृतिक और राजनीतिक रक्षा के लिये अद्भुत सहायक सिद्ध हुई।

लिथुआनियां और पोलैण्ड में वैवाहिक सम्बन्ध हो जाने से भी पोलैण्ड का राजनीतिक प्रभाव अधिक बढ़ा। किन्तु १४४४ ई० में बलगेरिया के वरना स्थान में पोलैण्ड के राजा इस्लामी सेना से हार गये। इससे कुछ समय तक उसका असर रहा. १४५४ ई० में पोलैण्ड के विधान ने व्यवस्थापक सभाओं को

युद्ध और शान्ति पर निश्चय करने का अधिकार दिया गया। उन सभाओं ने केन्द्रीय पार्लमेंट के लिये जो प्रतिनिधि भेजे उनमें मतैक्य न हो सका और पार्लमेंट का कार्य चलना भी कठिन हो गया। इसके अतिरिक्त जो राजकीय मन्त्रि-मण्डल बना उसमें राजनीतिज्ञों के अतिरिक्त धर्माचार्यों को भी स्थान मिला। किन्तु वहाँ भी सब सदस्यों में मतभेद ही रहा और विदेशों से सम्बन्ध रखने के बारे में सभी परस्पर खींच तान करने लगे। व्यक्तिगत और प्रान्तीय स्वार्थों की बातें इन उच्च धारा-सभाओं में भी पहुँच गयी। १५०५ ई० में एक ऐसा क़ानून बना जिसके अनुसार अमीरों, रईसों और सामन्त-सरदारों को अपने अधीनस्थ व्यक्तियों के सभी मामलों में नियंत्रण रखने का अधिकार हो गया। १५७२ ई० में जब अन्तिम आह्जलोज राजा का देहान्त होगया तो पार्लमेंट ने यह निश्चय किया कि भविष्य में राष्ट्रीय व्यवस्थापिका सभा ही राजाओं का चुनाव किया करे। इसका परिणाम देश के लिये कल्याणप्रद होने के बदले अनिष्टकर सिद्ध हुआ, क्योंकि दलबन्दी के कारण कोई भी योग्य व्यक्ति नहीं चुना जा सका और पारस्परिक कुचक्र और विद्वेष ने प्रजातन्त्र की सारी भावना को कुचल डाला। १५७६ ई० में हंगरी का राजकुमार पोलैण्ड का राजा बन गया। उसने केन्द्रीय सरकार को अधिक महत्त्व देकर देशको एकता और संगठन की ओर अग्रसर किया। उसने धर्माचार्यों को भी अप्रसन्न नहीं किया। उसने राष्ट्रहित के सामने व्यक्तिगत हितों और स्वार्थों को तुच्छ बना दिया।

कुछ समय पोलैण्ड के दिन सुख से बीते और वह तत्कालीन व्यापक तीस वर्षीय युद्ध से भी बच गया; किन्तु उसके बाद ही जब नीपलैरण्ड के कज्जाकों ने ख्मीनिकी के नेतृत्त्व में सामन्तों, रईसों और जमींदारों के विरुद्ध विद्रोह किया तो तुर्की और तातारों को भी आगे बढ़ने का अवसर मिल गया। पोलैण्ड को हार पर हार खानी पड़ी और अपने स्वार्थी नेताओं के कारण वह विनाश के गड्डे की ओर बढ़ने लगा। इसके पश्चात् स्वीडन ने भी पोलैण्ड पर चढ़ाई की और स्विस सेनाओं ने क्रेकाऊ तक छापा मारा। तत्कालीन राजा कासीमीर को बाध्य हो पोलैण्ड से निर्वासित होना पड़ा। बहुत से सरदारों और अमीरों ने देशद्रोह करके स्वीडन का पक्ष लिया। यद्यपि घोषणा यह की गई कि अब किसानों और मजदूरों को मुक्ति मिल जायगी; किन्तु यह घोषणा कागजों तक ही सीमित रही। राजा ने अपना राज्य 'पवित्र कुमारी' को सौंप दिया; और धर्म के नाम पर शासन जारी रखने की युक्ति सोची; किन्तु यह चाल सफल न हुई। अन्त में जानिकी नामक एक वीर नेता ने देश को पूर्णतः स्वतंत्र बनाया; किन्तु उस समय तक देश असह्य रूप से क्षतिग्रस्त हो चुका था। राजधानी उजाड़ बन चुकी थी। सारा देश यहाँ तक कि देहात भी उजाड़ बन चुके थे। देश में अकाल और महामारी का दौरा हुआ। फिर भी वहाँ के अमीरों की आँखें न खुली। पार्लमेंट अब भी राष्ट्रीयता के रंग में रंग न पायी थी। इधर कज्जाकों ने फिर विद्रोह किया और सहायता के लिये रूस से याचना की।

१७७६ ई० में जान सोबिस्की नामक एक वीर योद्धा राजा चुना गया। इसने तुर्कों के विरुद्ध अप्रतिम शौर्य प्रदर्शित किया था। १६८३ ई० के युद्ध में इसने आस्ट्रिया की राजधानी वियना में भी अपना पराक्रम अच्छी तरह दिखाया था। इसके बाद जो दो सैम्सन राजा हुये उन्होंने पोलैण्ड के बदले अपने जन्मस्थान का हित-साधन अधिक किया। पोलैण्ड में गृहयुद्ध हो गया। इन्हीं दिनों रूस में पीटर-महान् सुधार करने में लगे थे। शिक्षा के सम्बन्ध में उन्होंने आश्चर्यजनक प्रगति की थी। पोलैण्ड में भी इन्हीं दिनों फादककोनारस्की नामक सज्जन ने पोलैण्ड की शिक्षा सुधारने में अथक परिश्रम किया। उन्होंने बड़े परिश्रम से वारसा में नवीन ढंग का महा-विद्यालय स्थापित किया। यही नही, उन्होंने सामन्तों और अमीर भूस्वामियों के उस अधिकार के विरुद्ध भी आन्दोलन किया जिसके अनुसार वह अपने नौकरों से मनमाना व्यवहार कर सकते थे। उन्होंने पुस्तकें लिखकर भी देश की तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक कुप्रथाओं और कुविधानों की प्रखर आलोचना की। १७७२ ई० में फिर पोलैण्ड के टुकड़े-टुकड़े होने की नौबत आ गई क्योंकि पार्श्ववर्ती राज्य उसकी कमजोरी से अवगत थे। इससे पोलैण्ड के ऊँच और सम्पन्नवर्ग में भी हलचल मची। किन्तु उनमें मतभेद बना ही रहा, क्योंकि कुछ रूस की सहायता करना चाहते थे तो कुछ जर्मनी की। किन्तु शिक्षा के प्रताप से और कोनारस्की के प्रयत्न से नये देशभक्त युवकों का दल जागृत हो चुका था; उसने देश को किसी के फन्दे

किन्तु जिस भूमि के निर्माण और आर्थिक सगठन ने इतना प्रयत्न किया था उसे इसप्रकार जाने देना सहज न था। लोगों में अधिका-धिक जागृति उत्पन्न हुई और लोकमतका प्रभाव सेना तक परपड़ा। शिक्षा और जागृति का अच्छा प्रचार हुआ युरोप के तत्कालीन अन्य देशों की भाँति उन दिनों पोलैण्ड में भी विचार-क्रान्ति हुई। १८३० ई० में फ्रान्स में राज्य-क्रान्ति हुई। वेलजियम और इटली पर भी उसका प्रभाव पड़ा और पोलैण्ड भी उसके प्रभाव से अछूता न रहा। पोलैण्ड ने रूसी सेना को वेलजियम की ओर वढ़ने से रोक दिया इसके पश्चात् जब पोलैण्ड-वासियों को यह पतालगा कि रूसी सेना के लिये पोलैण्ड में रँगरूट भर्ती किये जायँगे तो पोलैण्ड के युवकों के जोशका ठिकाना न रहा। उनकी इसी भावना से पोलैण्ड में १८६३ ई० में क्रान्ति होगयी। १८७०ई० से पोलैण्ड का सितारा एक वार फिर चमका। उसकी स्मृद्धि वढ़ी रूस तक ने उससे माल लेना शुरू कर दिया। कुछ समय निरुपद्रव रूप से व्यतीत हुआ।

इन्हीं दिनों जर्मनी में विस्मार्क के अभ्युदय से सारा युरोप चकित एवं आतंकित हो उठा। विस्मार्क ने रूसके जार को आश्वा-सन दिया कि पोलैण्ड किसी तरह की सरकशी करे तो जर्मनी रूस का साथ देने को तैयार है। इधर पोलैण्ड का वह भाग जो रूसी सीमा के निकट है, उद्योग- धन्धों की वृद्धि के साथ-साथ मार्क्स के समाजवाद का भी प्रचार-क्षेत्र वन गया। १९०५ ई० से पोलैण्ड के समाजवादियों ने भी सैन्य-संगठन आरम्भ कर दिया था। इसके लिये अमेरिका-प्रवासी पोलों ने भी काफी धन भेजा।

१६१४ ई० में इस दल के बन्दूकधारी सैनिकों की दो टोलियाँ एक क्रेकाऊ में और दूसरी ल्वाऊ में तैयार हुई। पहली सेना के अध्यक्ष थे जोनेफ पिलसुद्स्की। इसे आष्ट्रियाके अधिकारियों ने भी प्रोत्साहन दिया था। इन सेनाओं के नेता वह लोग थे जिन्हें पहले निर्वासित कर दिया गया था। किन्तु रूसी सेना के मुकाबिले में यह दोनों सेनायें कुछ भी न कर सकीं। १६१५ई० में पोलैण्ड ज़ार के पंजे से अपने आप मुक्त हो गया। इसके साथ ही सारी स्थिति बदल गई। वारसा में अस्थायी रूप से शासन करने के लिये जर्मनी ने अपनी सरकार स्थापित करली साथ ही लब-लिन में आस्ट्रिया और हंगरी के प्रयत्न से एक संयुक्त-सरकार की स्थापना हो गई। कुछ रूस-विरोधी पोल इससे प्रसन्न हुये; किन्तु जो लोग पिलसुद्स्की की भाँति खरे देशभक्त थे उन्हें इससे बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने देख लिया कि इससे उनका राष्ट्रीय अस्तित्व और भी ख़तरे में पड़ गया है। किन्तु पोलैण्डकी मुक्ति सरल नहीं थी, क्योंकि अब तो वास्तविक शत्रुता जर्मन-साम्राज्य से थी। किन्तु इससे यह बात जरूर हुई कि एक भी पोल फ्रान्स के विरुद्ध जर्मनी को सहायता देने नहीं गया। इधर पिलसुद्स्की गुप्त रूप से सारी तैयारी करते रहे। १६१६ में पोलैण्ड की स्वाधीनता घोषित करदीगई; किन्तु दूसरे ही दिन जब जनरल बेसलर ने यह घोषणा की कि रूसी सेना का संगठन जर्मन अफ़सरों की देख रेख में होगा, तो पोलों के क्रोध का ठिकाना न रहा। पोलैण्ड ने जो स्टेट कौंसिल अस्थायी रूप से बनाई थी वह और जो त्व-

वस्थापक सभा तथा पार्लामेन्ट के चुनाव का कार्य करनेवाली थी। मित्र-राष्ट्रों ने पोलैण्ड की इन सब योजनाओं का विरोध किया, क्योंकि वह अभी इस के लिये समय उपयुक्त नहीं समझते थे। १६१७ ई० की जनवरी में स्टेट कौंसिल की बैठक पिलसुद्स्की की अध्यक्षता में हुई। कई मास तक पोलों में परस्पर मतभेद भी चलता रहा; किन्तु इसी समय मार्च १६१७ ई० में रूस में राज्य-क्रान्ति हो गई जिस से पोलैण्ड का आधा भाग्य जग गया। शेष आधा तब जगा जब प्रेसीडेण्ट विलसन ने शान्ति की चौदह शर्तें घोषित करते हुये पोलैण्ड की स्वतंत्रता स्वीकार की। इस से जर्मनी का पक्ष लेने वाले पोलों को बड़ी निराशा हुई। तत्कालीन अस्थायी पोल-कौंसिल के सात सदस्यों में से केवल एक ही ऐसा था जो अब भी जर्मनी की प्रभुता अपने देश पर देखना चाहता था। इस दशा को देख कर जर्मनी ने पोल सेना के अध्यक्ष को गिरफ़्तार कर लिया। अस्थायी कौंसिल ने इस्तीफ़ा दे दिया। पिलसुद्स्की उस से पहले ही अलग हो चुके थे।

इस बीच कुछ पोलों ने देश के बाहर जाकर भी पोलैण्ड के लिये महत्त्वपूर्ण कार्य किये। सीनकीविज़ नामक एक पोल उपन्यास-लेखक ने स्वीज़रलैण्ड में एक पोल-सहायक समिति बनाई। इसके निर्माण में इग्नेस पेडरवस्की का भी हाथ था। यूरोप में इस समिति को काफी समर्थन प्राप्त हुआ और आर्थिक सहायता अमेरिका-प्रवासी पोल भेजते रहे। इस सहयोग को और भी सुदृढ़ बनाने के लिये पेडरवस्की स्वयं अमेरिका गये। यहाँ यह बता

देना आवश्यक होगा कि पोल-सहायक-समिति-का उद्देश्य राजनीतिक न घोषित करके सामाजिक बताया जाता था और इसी आधार पर यह कार्य अबाध रूप से चलता रहा। इन्हीं दिनों डमोवस्की नामक एक और कार्यकर्ता ने लन्दन, पेरिस और रोम जाकर पोलैण्ड के पक्ष में काफ़ी प्रचार किया। पेरिस से उन्होंने पोलैंड की राजनीति पर समाचार पत्र भी निकाले और इन प्रयत्नों में मित्र राष्ट्रों—बृटेन और फ्रान्स ने इन पोलों को सहयोग और समर्थन किया।

रूस में जारशाही के पतन और क्रान्ति की सफलता के कारण पोलैण्ड को उधर से तो भय नहीं था—इधर जर्मनी से अवश्य भय था; पर जर्मनी के शत्रु फ्रान्स और बृटेन पोलैण्ड के मित्र बन चुके थे इसलिये पोलैण्ड को अपनी मुक्ति का निश्चय हो गया था। किन्तु इस समय पोलैण्ड की हित-रक्षा का दावा वारसा और पेरिस दोनों जगहों के प्रतिनिधि कर रहे थे। वारसा वाले दल में अब भी जर्मन पक्ष का नितान्त अभाव नहीं था। किन्तु पेरिस स्थित पोल-प्रतिनिधि अपने प्रयत्न में पूर्णतः सफल हुये-यहाँ तक कि उन्होंने फ्रान्स में पोलैण्ड के लिये सैनिक संगठन तक कर डाला जिसमें बहुत से अमेरिका-प्रवासी पोल आकर भर्ती होगये। इधर जब महासमर समाप्ति पर आया तो वारसा स्थित पोल-प्रतिनिधियों को मालूम हुआ कि हवा का रुख़ किधर है उन्होंने पेरिस-स्थित पोल-सहायक-समिति के पास सन्देश भेजकर एकता स्थापित करली। १९१८ ई० के नवम्बर महीने में

युद्ध समाप्त हुआ और शान्ति परिषद् को सफलता मिली। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रेसीडेण्ट विलसन ने पोलैण्ड के सम्बन्ध में जो फैसले की बातें लिखी थीं उनमें कुछ द्विविधा-जनक थीं। पहली तो यह थी कि "पोलैण्ड को जलीय निष्कासन की सुविधा दीजाय" जिसका अर्थ जर्मनी ने यह लगाया कि उसे केवल बालटिकसागर का थोडा-सा तट मिल जाय और विस्तुला-नदी के मुहाने तथा किनारों पर जर्मनी का ही अधिकार रहे। दूसरी बात यह थी कि "जर्मन युद्ध के पहले जिस सीमा पर थे, वहाँ से हट जायँ" डोमोवस्की ने अमेरिका जाकर इसका स्पष्टीकरण यह वाक्य-खण्ड जोड़कर कराया कि "मित्र राष्ट्रों के आदेश करते ही हट जायँ।"

ऊपर बतलाया गया है कि पिलसुद्स्की ने पेरिस सन्देश भेजकर वहाँ की पोल-सहायक-समिति से एकता स्थापित करली थी। जनवरी में वह एकता और भी सुदृढ़ होगई और उस एकता से सबकी चोट झेलने वाला पोलैण्ड एक बार फिर स्वतन्त्रता के सिंहासन पर बैठ गया। युद्ध के बाद जो सन्धि हुई उसके अनुसार पूर्वी प्रशिया अपने वोटों (मतों) से जर्मनी में मिल गया। डान्जिग को एक स्वतन्त्र नगर बना दिया गया और वह पोलैण्ड का बन्दरगाह बन गया। पोलैण्ड से इस शर्त पर हस्ताक्षर करा लिया गया कि वह अल्प संख्यकों के साथ समानता का व्यवहार करेगा। इस प्रकार फ्रान्स, बृटेन, जर्मनी और जैकोस्लोवाकिया ने पोलैण्ड को स्वतन्त्र राष्ट्र स्वीकार कर लिया और २८ वीं जून को

नव-राष्ट्र निर्माण

स्वतंत्र होने के बाद पोलैण्ड में राष्ट्र-निर्माण का कार्य जोरों पर चला। १६१६ ई० में जब पिलसुद्स्की ने देखा कि अब वह विलनो और उसकी सीमाओं की रक्षा कर सकते हैं तो उन्होंने उकरेनियनों से क्षणिक सन्धि करली और १६२० ई० में बोल-शेविकों के विरोधी उकरेनियन-नेता पेटलुरा से सहयोग किया। इसी वर्ष डान्जिग में हाई कमिश्नर का दफ्तर खुला और पोलैण्ड ने विस्तुला के दक्षिण से बालटिक तक के भू-भाग पर अधिकार करलिया। यह वही भूमि है जिसे 'करीडोर' कहते हैं। उत्तरी सिलीशिया में वोट या मत द्वारा यह निश्चय हुआ कि वह किस

बड़े जमींदारों ने अपने बड़े-बड़े भूखण्डों को परित्याग

दिया। छोटे-मोटे किसनों ने युद्ध के समय में खाद्य

गँहगी के कारण कुछ कमा लिया था। उसे वह भूमि

के लिये प्रस्तुत थे।

रही आर्थिक नीति का सुधार, सो उसके सम्बन्ध

ने अभी तक अपनी मुद्रानीति स्थिर न की थी—वह वे

मार्क्स और आस्ट्रियन क्राउन चलाकर अपना काम

किन्तु उस समय अन्तराष्ट्रीय जगत् में उन सिक्कों का

गिर गया कि वह मिट्टी जैसे हो गये। इससे पोलैण्ड

कठिनाई का सामना करना पड़ा। अन्ततः उसने अमेरि

डालर और अपने प्रेस(छापेखाने) में मुद्रित नोटों के स

आर्थिक दशा को बिगड़ने से बचा लिया।

उद्योग-धन्धों की अवस्था भी इन दिनों शिथिल हो

उसकी दशा सुधारने का भी प्रयत्न किया गया और १

अमेरिका से ७ करोड़ डालर अर्थात् कोई ६१ करोड़ र

ने ऋण लिये। इससे पोलैण्ड को राज्य के सभी

उन्नत बनाने में सहायता मिली। लिथुआनिया की

धानी विलनो अब पोलैण्ड का एक खास नगर बन

लिये यहाँ भी पोलैण्ड को बहुत कुछ करना था। विल

तो पहले लिथुआनिया का नगर था पर उसमें मुश्कि

प्रतिशत लिथुआनियन बसते थे; शेष सब पोल

यन थे।

१९१९ ई० में मित्र-राष्ट्रों ने पोलैण्ड को पूर्वी गैलीशिया का प्रादेशिक शासन पच्चीस वर्ष के लिये प्रदान किया था; किन्तु वह स्वीकार नहीं किया जा सका। इसीलिये १९२३ ई० में इस दिशा में कुछ भी कार्यवाही न हो सकी। बाल्टिक के द्वीपों के सम्बन्ध में भी कई परिषदें करके समझौता करने का प्रयत्न किया गया। फिनलैण्ड, इस्थोनिया, लटविया और पोलैण्ड ने समझौते पर हस्ताक्षर भी कर दिये। किन्तु राष्ट्रसंघ ने जब तक इस निश्चय पर मुहर न लगा दी तब तक इसकी पूर्ति न हो सकी। डायना नामक मछुओं की बस्ती को पोलैण्ड ने पुनर्निर्मित कर राष्ट्रीय बन्दरगाह का रूप दे दिया।

किन्तु जर्मनी ने १९२० से ही अपने उस भूभाग पर दाँत लगा रखा था जो मित्रराष्ट्रों ने नयी सन्धि के अनुसार जर्मनी से छीन कर पोलैण्ड को दिये थे और जिसमें डान्जिंग, फ्री-डोर और डायना की प्रमुख बस्तियाँ भी सम्मिलित थीं। किन्तु पोलैण्ड को मित्रराष्ट्रों—ब्रटेन और फ्रान्स का बल मिला हुआ था इसलिये वह जर्मनी की पर्वा क्यों करता। जर्मनी ने डान्जिग-निवासियों पर लगातार जोर डालना शुरू किया और यह भय दिया कि किसी भी समय बन्दरगाह में अड़ंगा डालकर पोलैण्ड का आयात-निर्यात जर्मनी बन्द कर दे सकता है। फ्रान्स की सहायता से इसीलिये कुछ ही वर्षों में अपने बन्दरगाह और अपने जहाज पोलैण्ड ने तैयार करा लिये। १९२६ ई० में पोलैण्ड का सामुद्रिक व्यवसाय एक चौथाई बढ़ गया था; किन्तु १९३२ ई० में

दो तिहाई बढ़ गया—डान्जिग और डायना इन दो बन्दरगाहों की बदौलत पोलैण्ड का सम्बन्ध सारे संसार से हो गया। किन्तु जिस जर्मनी से यह महत्त्वपूर्ण स्थान ले लिये गये थे, वह इन बन्दरगाहों और कारीडोर के इलाक़े पर फिर अधिकार करने के लिये बेचैन था।

१६३५ ई० के अप्रैल महीने में पोलैण्ड ने जो नया शासन-विधान अपने देश के लिये बनाया, वह अब फ्रान्सीसी ढंग का न रह कर अमेरिकन ढंग का प्रजातंत्रीय-शासन-विधान बन गया। प्रेसीडेण्ट और राष्ट्रपति को ऐसे व्यापक अधिकार दे दिये गये कि उसके सम्बन्ध में पार्लीमेण्ट में भी प्रश्न नहीं हो सकते थे। पहले यह पद जहाँ प्रतिष्ठा और शोभा के लिये ही था वहाँ अब मंत्रिमण्डल के सहयोग से राष्ट्रपति शासन-कार्य में भाग लेने के लिये बाध्य हो गये। नौ वर्ष से मार्शल पिलसुद्स्की ने ही राष्ट्र को समय-समय पर सँभाला था। अब उनका कार्य और उत्तर-दायित्व और भी बढ़ गया; किन्तु उनका विश्वास इस प्रकार की पार्लीमेण्ट की पद्धति पर नहीं था, क्योंकि वह राष्ट्रनिर्माण के बजट या आय-व्यय के लेखे को इस प्रकार सार्वजनिक बहस का विषय बनाने के पक्ष में नहीं थे। इसी प्रकार वह पार्लीमेण्ट में दलबन्दी के भी विरुद्ध थे, इसलिये चुनाव भी दलबन्दी के आधार पर न करके केवल 'नान-पार्टी' या बिना किसी दल के नाम पर किया गया। किन्तु चार वर्ष के लगातार प्रयत्न और दो आम चुनावों के बाद ही इस दिशा में कुछ सफलता प्राप्त हो

सकी। इस सिलसिले में विरोधी दल के नेता—विलोशिया के खृष्टान नेता और किसान नेता विटोज १६३० ई० के चुनाव के पहले ही गिरफ़्तार कर लिये जिससे पार्टी या दल के नाम पर चुनाव लड़ने वालों का प्रभाव कम हो जाय। इससे पहलों में बड़ा असन्तोष फैल गया और इस कार्य को सरकार की ग़ैर क़ानूनी चाल कहा गया—इसे नागरिकता के अधिकार का भी विघातक समझा गया। पोलैण्ड साम्राज्यवादी राष्ट्रों की राजधानी में शिक्षा प्राप्त नेताओं के नेतृत्व में कम विश्वास करने लगा, और सर्वसाधारण सरकार को सहयोग देने के बदले उसका विरोध करने लगे। आदान-प्रदान, समझौते और सहयोग की भावना लुप्त हो गई और लोग श्रेणी-हित और दलबन्दी के लिये विकल हो उठे। जिस समय राष्ट्र-निर्माण का कार्य सम्पूर्ण मनोयोग और सहयोग पूर्वक होना चाहिये था उस समय देश में इस प्रकार की विचार-धारायें काम करने लगीं। मार्शल-पिलसुद्स्की इन विरोधों से तंग आगये—फिर भी एक दृढ़ राजनीतिज्ञ की भाँति उन्होंने धैर्य का परित्याग नहीं किया। १६२६ ई० में कार्य-भार सँभालने के बाद से ही उन्होंने सरकार की सेवा में ऐसे ही लोगों को विशेष रूप से लगाया जो अनुभव हीन होते हुये भी दलबन्दी के विरोधी थे। इनसे मार्शल के पूर्ववर्ती सहकर्मी उनसे पृथक् हो गये; किन्तु वह समझते थे कि पिलसुद्स्की लोकमत को साथ लेकर नहीं चल रहे हैं। सोशलिस्ट या समाज-वादियों ने भी मार्शल से असहयोग किया। १६२८ ई० के चुनाव में बरेल्

दल नामक एक पार्टी को पार्लमेण्ट में एक-तिहाई जगहें प्राप्त हो गईं। इसमें थे तो अधिकांशतः पुराने ही कार्यकर्त्ता ; पर वे नयी पार्टी की ओर से और नये आदर्शों के नाम पर चुने गये। किन्तु यह ख़ास बात थी कि १९२३ ई० के चुनाव में जहाँ बीसों दलों ने भाग लिया था, वहाँ १९२८ ई० में केवल एक ही विरोधी दल सफल हुआ। यह पिलसुद्स्की के विचारों की कम सफलता नहीं थी। इस चुनाव में सरकार का राष्ट्र-निर्माण कार्य पहले की अपेक्षा सुगम होगया ; किन्तु उसे ठोस बहुमत अब भी प्राप्त नहीं था इसलिये थोडी-बहुत कठिनाइयाँ तो थीं ही। आगे चलकर मंत्रिमण्डल में परिवर्तन हुये। १९३० ई० में पिलसुद्स्की ने राष्ट्रपति के बदले प्रधान-मंत्री का पद ग्रहण किया और उसी साल राष्ट्रपति ने मंत्रिमण्डल भंग कर दिया। फिर नया निर्वाचन हुआ। इस बार दल-बन्दी का नाम तो ज़रूर रह गया था किन्तु 'नान-पार्टी' आन्दोलन काफ़ी हद तक सफल हो चुका था। इस बार सरकार को आधी से अधिक जगहें—२४७ अपने पक्ष में मिल गईं। अल्प संख्यकों और किसानों का दल बुरी तरह से हारा। राष्ट्रीय प्रजातंत्र दल को पहले से अधिक जगहें मिलीं। १९३०-३२ ई० में मार्शल पिलसुद्स्की को राष्ट्रहित की रक्षा के लिये चाहे जो करने के लिये अधिकार दे दिया गया। इन्हीं दिनों देश की आर्थिक दशा सुधारने और उद्योग-धन्धे तथा व्यवसाय की वृद्धि के पूर्ण प्रयत्न किये गये।

१९३३ ई० में नये राजनीतिक-दल का निर्माण हो रहा था।

यही दल 'नान-पार्टी' निर्दल-विहीन दल बनानेवाली सरकार का पूर्ण समर्थक था। इसका नाम हुआ राष्ट्रीय ऐक्य दल। इसने प्रतिनिधि सदस्यों की भर्ती संगठनों की तरह आरम्भ कर दी। किन्तु इस कार्य में भी पूर्ण सफलता नहीं मिली। इस आन्दोलन के नेता थे बैंक-आफ-पोलैण्ड के अध्यक्ष मि० आदम कोक। इन्होंने दक्षिण और वाम दोनों ही दलों के युवकों को संगठित करना आरम्भ किया; किन्तु पर्याप्त सहयोग मिलने पर भी पूर्ण सफलता न मिल सकी। वास्तव में कोक महाशय में संगठन-शक्ति का अभाव था। १९३८ ई० में वह स्वास्थ्य खराब होने के बहाने अपने पद से पृथक् हो गये। उनका स्थान एक सैनिक ने ग्रहण कर लिया। संस्था का कार्य जारी रहा, किन्तु छः मास से भीतर ही भीतर अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण बहुत बिगड़ा और पोलैण्ड पर भी उसका प्रभाव पड़ने ही वाला था।

इस वातावरण को साफ करने के लिये राष्ट्रपति ने १९३८ ई० के मई महीने में पार्लमेण्ट भंग कर दी और नये निर्वाचन की घोषणा कर दी। उद्देश्य यह था कि नई व्यवस्थापक सभा मताधिकार की आपत्तिजनक धाराओं में अभीष्ट परिवर्तन कर दे। विरोधी दल और उसके पत्रों ने चुनाव के पहले ही मताधिकार की धाराओं में परिवर्तन किये जाने की माँग की और यह भी धमकी दी कि यदि ऐसा न किया गया तो सारी योजना का बहिष्कार कर दिया जायगा। किन्तु इस माँग की पूर्ति न की गई। नवम्बर में निर्वाचन हो गया। इस बार १९३५ ई०

की अपेक्षा अधिक मतदाताओं ने अपने अधिकार का उपयोग किया और शासन-सञ्चालक दल का स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर लिया गया। जो मंत्रि-मण्डल इस समय बना उसके अतिरिक्त दूसरे बहुमत का मंत्रिमण्डल बनना एक प्रकार से असम्भव बात थी। इसी के बाद मार्च मास में लिथुआनिया से नई सन्धि की गई।

इस साल पोलैण्ड का बजट या आय-व्यय का लेखा भी ठीक बना और उसके उद्योग-धन्धों में भी काफ़ी अभिवृद्धि हुई। खाद्य-सामग्री की भी व्यवस्था पर्याप्त रूप से हो गई और ऐसा समझा गया कि उसकी ऊर्ध्वमुखी गति उसे विकास के उच्च शिखर पर चढ़ा देगी। जर्मनी के पशुबल का प्रदर्शन और रूस के सैद्धान्तिक प्रचार का प्रभाव पोलैण्ड-वासियों पर भी पड़ा। किन्तु समाजवाद के प्रचार को सरकार ने पूर्ण प्रयत्न से रोका। अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर सघन बादलों की घटा छाने लगी और नवीन पोलैण्ड उन्हीं की अँधेरी छाया में अपना पथ ढूँढ़ने लगा।

के राजनीतिज्ञ तथा समाचार-पत्र यह अनुमान लगा रहे थे कि
दोनों दल सिर्फ़ बाजी चली है। पोलैण्ड पर आक्रमण किये
जाने की आशंका अधिकांश लोगों को थी; किन्तु बलिदान के इस
बकरे को वधोन्मुख होने के पूर्व ब्रिटेन और फ्रान्स ने पूर्ण प्रयत्न से
इसे उकसाया। पोलों की बहादुरी के गीत गाये गये। उनकी सै-
निक तैयारी की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई और यहाँ तक कहा गया
कि पोलैण्ड की सैनिक-शक्ति सारे संसार में पांचवें दर्जे की है।

इधर जर्मनी पहले ही से शर-सन्धान किये बैठा था। पोलैण्ड
का डान्जिग कारीडोर और डायना पर अधिकार और प्रभाव
हर हिटलर को एक आँख न भाता था। जो प्रदेश किसी समय
जर्मनी के थे और जिन्हें गत महायुद्ध के बाद मित्रराष्ट्रों ने और
उनके इशारे पर अमेरिका ने जबर्दस्ती पोलैण्ड को दिला दिया
था उन्हें पुनः स्वदेश में सम्मिलित करने की अभिलाषा सबल
जर्मनी को थी। युद्ध के पूर्व संसार के राष्ट्रों के शक्ति-सन्तुलन
और गुटबन्दी का अध्ययन जर्मनी कर चुका था और वह यह
भी देख चुका था कि मध्य यूरोप में कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो
जर्मनी के विरुद्ध पोलैण्ड की सहायता करने का साहस कर सके।
ऐसी अवस्था में अगर पोलैण्ड की सहायता पर कोई है तो
वह ब्रिटेन और फ्रान्स ही हो सकते हैं: किन्तु इन दोनों ही देशों
की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि वास्तविक युद्ध छिड़ जाने पर
वे पोलैण्ड तक पहुँच भी नहीं सकते हाँ, दूर से ही ललकार-
ललकार कर पोलैण्ड को मरवा देने व [illegible]

पोलैण्ड को तो यार लोगों ने ऐसा भरा दिया था कि इस झूठी भलाई की आशा से सूली पर चढ़ने को तैयार हो गया। पोलैण्ड के वैदेशिक सचिव मि० बेक की लन्दन-यात्रा ने रही-सही कसर भी पूरी करदी इससे जर्मनी को निश्चय हो गया कि अब पोलैण्ड किधर जा रहा है और उसने उसी दिन अपने कर्त्तव्य का निश्चय भी कर लिया। उसने जनवरी १६३४ ई० के समझौते को रद्द कर देने का फैसला भी कर लिया। ५ वीं मई को पोलैण्ड के वैदेशिक सचिव ने पोलैण्ड को जो पत्र लिखा उससे प्रतीत होता था कि बहकाने वालों का जादू उसके सिर पर चढ़ कर बोल रहा है। उसमें कहा गया था कि पोलैण्ड को भी दूसरों से सन्धि और विग्रह करने का वैसा ही अधिकार है जैसा जर्मनी को है। ऐसा करते समय वह भावी खतरे की ओर जरा भी ध्यान न दे सके। उन्होंने जर्मनी के मुकाबले में अपनी शक्ति का अन्दाजा भी नहीं लगाया। पोलैण्ड का जो दल जर्मनी का विरोधी था, वह इस-घटना क्रम से बहुत प्रसन्न हुआ, किन्तु जो रूस का पक्ष [illegible] करते थे उन्हें [illegible] हुआ।

पोलैण्ड [illegible] के पिछले दिनों इसने अपने हवाई-बेड़े को [illegible] था जिसके [illegible] लिया है और [illegible] द्वारा इसने अपनी हवाई सेना आधुनिक बनाने का पूरा प्रयत्न किया है, इससे वह जर्मनी का [illegible] बन गया है, और यदि इसमें कुछ त्रुटियां भी हैं तो [illegible] इसके सच्चे मित्र ब्रिटेन और फ्रान्स दूर [illegible]

वह परिषद् हुई थी शान्ति-स्थापना के लिये; पर अशान्ति का यह बीज बो गयी। डाञ्जिग-निवासी जर्मनों के प्रति पोल सरकार का व्यवहार पहले भी सन्तोषजनक नहीं था, क्योंकि पोल-सरकार उन्हें उपद्रव का कारण समझती थी; किन्तु १६३३ ई० से इसका रूप अधिक स्पष्ट होने लगा। डाञ्जिग एक प्राचीन बन्दरगाह है और उसका ७०० वर्ष का पुराना इतिहास है; यद्यपि पहले यह हिटरलैण्ड का प्रमुख नगर माना जाता था; पर जर्मनी का प्रभुत्व बढ़ने पर यह मुख्य रूप से एक जर्मन नगर बन गया। वास्तव में पहले यहाँ स्लाव जाति के लोग बसते थे; किन्तु घटनाक्रम ने इसे जर्मन नगर बना दिया था। प्रशिया के अधिपत्य में इस नगर की वैसी उन्नति नहीं हुई थी जैसी जर्मनों के शासन काल में हुई। खैर पुराने इतिहास को छोड़ भी दें तो भी यह मानना पड़ेगा कि डाञ्जिग वास्तव में एक जर्मन नगर है और वहाँ के अधिकांश निवासी भी जर्मन और जर्मनपक्ष के ही हैं। हाँ, यह बात अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी कि पोलैण्ड का पृथक् अस्तित्व होने पर यह उसका सामुद्रिक द्वार होने के कारण बड़ा ही महत्त्वपूर्ण नगर है। यदि डाञ्जिग युद्ध के बाद जर्मनी के हाथों में होता तो वहाँ वह सैनिक अड्डा बना कर अन्य यूरोप के राज्यों को आज अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रित दशा में देखता। इसमें सन्देह नहीं कि डाञ्जिग भी पोलैण्ड के सामुद्रिक व्यापार के लिये बड़ा महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह है; किन्तु इसका [illegible] ई० के बाद राजनीतिक चाल के रूप में [illegible] है।

यदि डान्जिग के मामले में पोलैण्ड को फ्रान्स और बृटन का कुपरामर्श न मिला होता तो शायद पोलैण्ड के युद्ध की यह भीषण नर-संहार पूर्ण रोमांचकारी कहानी न लिखी जाती जिसका वर्णन अगले पृष्ठों में है। पोलैण्ड ने जर्मनी से सुलह-समझौते का प्रयत्न करने के बदले बढ़ावे में आकर युद्ध की तैयारी करने में ही अपनी सारी शक्ति लगा दी। उसकी सेनाओं ने युद्ध घोषणा के पहले ही डान्जिग नगर को तीन ओरसे-घेर लिया उसने अपना सैनिक व्यय इतना बढ़ा लिया कि उसे इस संकट-काल में दस लाख पौण्ड अर्थात् लगभग सवा करोड़ रुपये प्रति सप्ताह खर्च करना पड़ा और अन्ततः इस असाधारण स्थिति का मुक़ाबला करने के लिये आरम्भ में ही उसे बृटेन से ऋण मांगने के लिये बाध्य होना पड़ा।

जर्मनी का दावा स्पष्ट था। उसका कहना था कि भौगोलिक दृष्टि से पृथक् होते हुये भी डान्जिग नगर जर्मनी का है क्योंकि वहाँके अधिकांश निवासी जर्मन और जर्मनी के पक्ष के हैं। जर्मनी इस सिलसिले में अपनी सीमायें वही रखने को राजी था जो युद्ध के पूर्व १९१४ ई० में थी। वास्तव में युद्ध के बाद डान्जिग को स्वतन्त्र नगर क़रार देना ही सब उपद्रवों का मूल सिद्ध हुआ। तब से अब तक बीस वर्षों में पोलैण्ड का निरन्तर अधिकार होता गया और उसकी मानसिक दशा ऐसी हो गई कि वह डान्जिग के स्वतंत्र नगर के मामलों में अपना दावा अबाध रूप से लागू समझने लगा। इस स्वतंत्र नगर की घटनावलियों का निरीक्षण करने

के लिये एक तटस्थ कमिश्नर भी मित्र-राष्ट्रों की कृपा से नियुक्त हुये थे। वह तटस्थ होकर सबकी भलाई करने का कर्त्तव्य-पालन करने वाले समझे जाते थे।

१९२९ ई० के मार्च महीने के अन्त तक डान्जिग की स्थिति ऐसी हो गई कि जर्मनी ने अपना सारा ध्यान उधर ही लगा दिया। वृटिश प्रधान-मंत्री ने पहले तो पार्लामेण्ट में अपनी सरकार की नीति घोषित की, फिर कोई पन्द्रह दिन के अन्दर ही पोलैण्ड से सहयोग करने का समझौता कर लिया। वृटेन और फ्रान्स ने पोलैण्ड से सहयोग करने का निश्चय क्यों किया, इसके सम्बन्ध में संसार के राजनीतिज्ञों और समाचार-पत्रों में विभिन्न मत हैं। कुछ का कहना है कि वृटेन और फ्रान्स पोलैण्ड के लिये नहीं, बल्कि अपना और अपने साम्राज्य का अस्तित्व बचाने के लिये युद्ध क्षेत्र में उतरे हैं, क्योंकि आज नहीं तो कल उन्हें प्रचण्ड जर्मन सैन्य का मुकाबला करना ही पड़ेगा। थोड़े से लोगों का यह भी ख्याल है कि हिटलर ने युद्ध से पूर्व वाले जर्मन उपनिवेश लेने की बात कह कर अंगरेजों और फ्रान्सीसियों को भावी विपत्ति से पहले ही सावधान कर दिया है और अब वह जर्मनी से लड़ने या उसे दूसरे राष्ट्रों से लड़वाने में सहायक होने से न चूकेंगे। मजे की बात तो यह है कि पोलैण्ड ने वृटेन और फ्रान्स के इस अभिप्राय को अच्छी तरह नहीं समझा और उनके हाथ की कठपुतली हो गया। पोलैण्ड को मालूम था कि जर्मन वायुयान केवल बीस मिनट में बर्लिन से चल कर उसकी

युद्धारम्भ
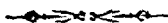
पोलैण्ड पर आक्रमण करने के पूर्व जर्मनी ने और सर्व साधनों से पूरी तैयारी करली थी। शस्त्रारम्भ और सैन्य सन्धान के अतिरिक्त उसकी तैयारी का एक महत्त्व पूर्ण अंग था रूस के साथ समझौता करना। कहाँ तो अंगरेज रूस से सन्धि करने के लिये आतुर हो रहे थे और वे अपने प्रतिनिधि मास्को भेजकर यह आशा कर रहे थे कि अब रूस को अपनी ओर मिलाकर जर्मनी को बिल्कुल एकाकी बना देने का अच्छा सुअवसर हाथ लगेगा। किन्तु ठीक समय पर जर्मनी ने रूस से समझौता करके अंगरेजों को ऐसा चकित कर दिया कि फ्रान्स

अभाव में टूट गये।

* * * *

उपर्युक्त बातें केवल इस लिये बतलाई गई हैं कि जिस से पोलैण्ड के बारे में रूस की दिलचस्पी का वास्तविक कारण पाठकों को मालूम हो जाय।

जर्मनी को अपने जसूसों द्वारा पोलैण्ड की गति-विधि का पता लग जाया करता था। वृटेन और फ्रान्स पोलैण्ड को जिस प्रकार बहका कर 'तबेले की बला बन्दर के सिर' डाल रहे थे उससे जर्मनी पूर्णतः अवगत था। जर्मनी यह भी समझता था कि मित्र-राष्ट्रों को अब जर्मनी का प्रताप असह्य हो गया है और वह आज नहीं तो कल जर्मनी से लड़ने के लिये या तो स्वयं तैयार हो जायंगे या अन्य ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देंगे कि छोटे-मोटे राष्ट्र जर्मनी से भिड़ कर उसकी शक्ति क्षीण करने का प्रयत्न करें, क्योंकि ऐसे प्रबल शत्रु की शक्ति जितनी ही घटे उतना ही वृटेन के लिये कल्याण प्रद होगा। यदि मामला पोलैण्ड और जर्मनी के ही बीच का होता तो उसके सुलझाने में शायद अधिक कठिनाई का सामना न करना पड़ता; किन्तु पोलैण्ड की सरकार वृटिश और फ्रेंच सरकार के इशारे पर नाच रही थी, इसलिये समझौते और शान्ति का प्रश्न वास्तविक रूप में उठने ही न पाता था।

अगस्त १९३९ ई० के आरम्भ में पोलैण्ड की सरकार और डाञ्जिग सिनेट में झगड़ा शुरू हुआ। बात कोई ऐसी नहीं थी जिस को लड़े बिना [illegible] उपाय ही न रहा हो।

कार से यह स्पष्ट प्रस्ताव कर दिया कि निम्नलिखित शर्तों पर जर्मनी पोलैण्ड से समझौता कर सकता है:—

(१) डान्जिग जर्मनी को वापस दे दिया जाय।

(२) एक साल बाद डान्जिग के पार्श्ववर्ती कारीडोर के निवासियों का मत लेकर यह निर्णय किया जाय कि वह क्षेत्र जर्मनी में सम्मिलित होना चाहता है या पोलैण्ड में।

(३) जो जर्मन १६३८ ई० की १ ली जनवरी से कारीडोर में रहते हैं उन्हें भी मत देने का अधिकार हो।

(४) मतों या वोटों द्वारा कारीडोर के सम्बन्ध में चाहे जो फ़ैसला हो; पर इसकी राहों से आने-जाने का अधिकार जर्मनी को भी हो।

जर्मन-सरकार ने दो दिनों तक इस प्रस्ताव के उत्तर की प्रतीक्षा की। जब अड़तालीस घण्टे में भी पोलैण्ड का कोई जवाब न आया तो बर्लिन से सरकारी रेडियो-द्वारा ३१ वीं अक्तूबर को उपर्युक्त प्रस्ताव की सूचना सारे संसार को देते हुये कहा गया कि यह प्रस्ताव पोल सरकार के सामने उपस्थित करते हुये जर्मन ने यह भी कहा था कि डान्जिग युद्ध का नहीं, व्यवसाय का केन्द्र बनाया जायगा और डायनिया-बन्दर को भी ऐसा ही महत्व पूर्ण व्यापारिक केन्द्र बनाया जायगा। इन दोनों ही स्थानों में किसी प्रकार की क़िलेबन्दी न की जायगी। पोल-सरकार के यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेने पर जर्मनी और पोलैण्ड दोनों ही अपनी सैनिक-शक्ति घटाना आरम्भ कर देंगे।

जर्मन-साम्राज्य डान्जिग को अपने हृदय में स्थान देता है। मैं आप को डान्जिग का सर्वश्रेष्ठ-शासक नियुक्त करता हूँ।

अन्ततः १ ली सितम्बर को अपराह्न में उस जर्मन आक्रमण का आरम्भ हुआ जो प्रबल तूफ़ान की तरह पोल-सीमा की क़िले-मोर्चों और तोपों तथा उनमें बैठे पोल-सैनिकों को इस प्रकार उड़ा ले गया, जैसे प्रबल झंझावात के साथ सूखी पत्तियाँ, तिनके और झाड़ झंखाड़ उड़ जाते हैं। अन्ततः इसी सिलसिले में यह तार भी आया कि जर्मनी ने डान्जिग में प्रवेश करके उस पर अधिकार भी कर लिया है।

इसके उपरान्त यह समाचार आया कि जर्मनी के इस भयानक आक्रमण का समाचार पाकर फ्रान्स ने जर्मन सीमा की सीगफ्रीड लाइन के मुक़ाबिले में बनाई अपनी मैजिनो लाइन से गोलाबारी शुरू कर दी, जो सारी रात जारी रही। उसी रात यह भी समाचार मिला कि पोलैण्ड सरकार अपनी राजधानी वारसा नगर से उठाकर लुबलिन चली गई। दक्षिण-पश्चिम से भी जर्मन सेना प्रबल वेग से आगे बढ़ रही है। जर्मनी ने प्रसिद्ध पोल-शिक्षा केन्द्र क्रेकाऊ पर बिना लड़े ही अनायास अधिकार कर लिया।

[illegible] वीं सितम्बर १९३९ ई० को जर्मनी के प्रधान सेनापति ने घोषणा की कि गत यूरोपीय महायुद्ध के अन्त में हमारा डान्जिग छीनकर प्रशिया के दो भाग कर दिये गये थे। इधर कुछ ही दिनों में जर्मनी ने अपने पराक्रम से प्रशिया के पश्चिमी और [illegible] भागों पर अधिकार कर लिया

८ वीं सितम्बर को यह समाचार आया कि दक्षिण एटलाए-टिक-महासागरमें जर्मनीकी पनडुब्बी नावें पहुँचगई हैं और अपनी क्रिया शीलता प्रदर्शित कर रही हैं। अंगरेजों का माली जहाज 'ओलिवग्रेव' जर्मन पनडुब्बी नाव की मार से डूब गया। इस जहाज में ३२ हिन्दुस्तानी मल्लाह थे जिन्हें बचा लिया गया। जर्मन अफसरों ने उनके साथ सहानुभूति पूर्ण व्यवहार किया। एटला-ण्टिक-सागर में ही 'पाकस्तान' और 'तामारा' नामक बृटिश जहाजों पर भी आक्रमण हुये।

१० वीं सितम्बर तक जर्मनी ने वारसा पर भी पूर्णतः कब्जा करलिया। जर्मन सेना से सीमान्त कीपर्वतावली और ऊपरी विस्चुला नदी के बीच पोल सेना को खदेड़ती हुई पूर्व दिशा की ओर बढ़ती जा रही हैं। रायटर के सम्वाददाता ने पोलैण्ड से भागकर रूमानिया जाने का जो साहस पूर्ण कार्य किया है उसका वर्णन १० वीं सितम्बर को किया गया है—कल रात रायटर के सम्वाद-दाता वारसा से रूमानिया के जेकतोटजी स्थान में पहुँचे हैं। यह तीन दिन में अपनी मोटर से यहाँ पहुँचे हैं। उनकी मोटर वारसा के अँगरेजी दूतावास के कर्मचारियों से ठसाठस भर गई थी। रात में वह बड़ी कठिनाई से शत्रु-पक्ष के मँडराते वायुयानों से पीछा छुड़ा सके। सम्वाददाता का यह कहना है कि जर्मनी के यकायक द्रुतवेग से आगे बढ़ने से पोलैण्ड परेशान होगया है।

जर्मनी उधर तो पोलैण्ड से लड़ रहा था इधर उसके पन-डुब्बे अँगरेजी और फ्रान्सीसी जहाजों को डुबाने में लगे थे।

विकट संघर्ष

१४ वीं सितम्बर को समाचार मिला कि पश्चिमी मोर्चे पर भीषण संघर्ष हो रहा है, पर पोलैण्ड में मौसम की खराबी के कारण युद्ध की प्रगति कुछ शिथिल पड़ गयी है। भारी मोटर लारियों और टैंकों के चलने से कीचड़ से भरी भूमि और भी दलदल-सदृश हो गयी। उसी दिन लन्दन से यह भी खबर आयी कि डायनिया बन्दरगाह पर कब्जा करके जर्मन सेना पूर्व में कोने-कोने तक पहुँच गयी है। पश्चिमी मोर्चे पर जर्मन ने आज भयंकर गोलाबारी की। आज ही जर्मन सरकार ने यह घोषणा की कि यदि पोलैण्ड अब भी हथियार रख कर आत्म-समर्पण कर दे तो
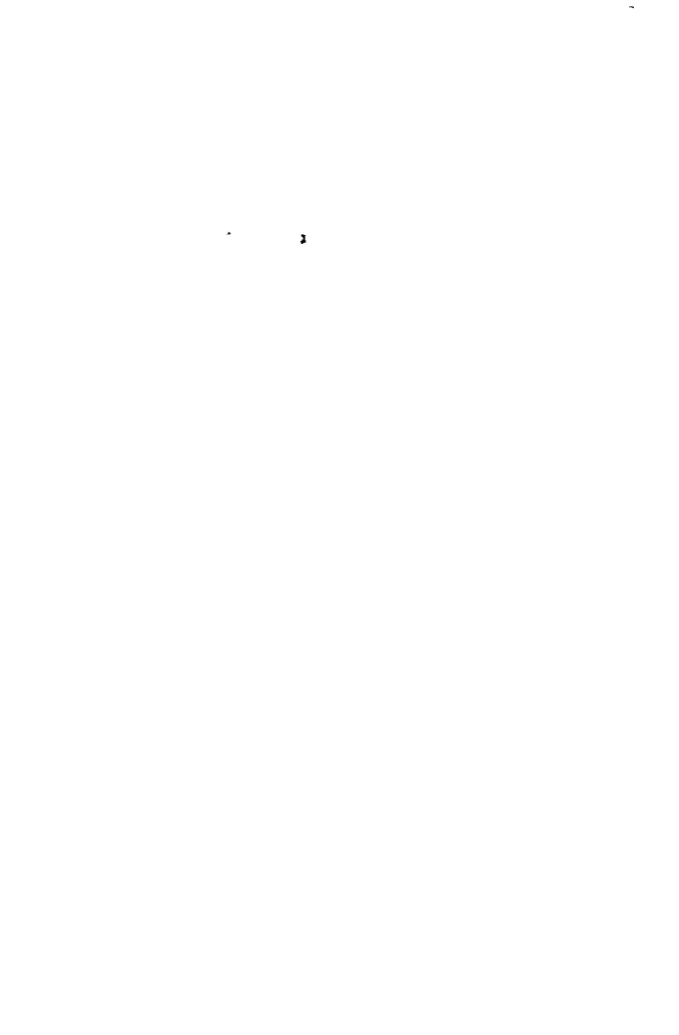
हास में एक उपहासास्पद अध्याय है। उनकी इस अदूरदर्शिता के फल-स्वरूप ही उन्हें वारसा को घिरते देख जिस कष्ट के साथ भागकर रूमानिया में शरण लेनी पड़ी, उसका वर्णन एक पत्रकार की आप बीती के साथ पठनीय है। यह पत्रकार महाशय ६ वीं सितम्बर को वारसा से अन्तिम ट्रेन द्वारा रूमानिया गये थे। उसी गाड़ी से पोल सरकार के प्रमुखतम संचालक और सूत्रधार धन-दौलत और कागज-पत्र लेकर रवाना हुये थे। इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि उन सभी पर क्या क्या बीती:—

वारसा से ६ ठीं सितम्बर की अन्तिम स्पेशल ट्रेन से हम रूमानिया को रवाना हो गये। रूमानिया की सीमा पर पहुँचते-पहुँचते उस ट्रेन पर १४ बार बम बरसाये गये। इस ट्रेन में पोल सरकार के कितने ही उच्च अफसर और महत्त्वपूर्ण कागज-पत्र थे। विदेशी पत्रकारों में मैं ही अन्तिम था जो अभी तक वारसा में रह गया था। इस अन्तिम ट्रेन द्वारा रवाना होने पर मुझे यह देखने का अवसर मिला कि पोल सरकार के समस्त कल-पुर्जे उसी ट्रेन में ठुँसे थे। यह ट्रेन बाद में भूतगाड़ी के नाम से प्रसिद्ध हुई, क्योंकि उसमें कितनों हीं की जानें गयी थी। हमारी गाड़ी जर्मन बमबाज वायुयानों के नीचे घूमती फिरती आगे बढ़ रही थी। बड़ी कुशलता के साथ उसे आगे बढ़ाने पर भी वह अभीष्ट स्थान तक न पहुँच सकी। पोलैण्ड सरकार ने केवल एक घन्टे में वारसा खाली करने का निश्चय किया था। ५ वीं सितम्बर को जब जर्मन सेना ने वारसा के उत्तर का मोरचा

गाड़ी में १५६० यात्री थे। उन्हें जिन कष्टों का सामना करना पड़ा वह वर्णनातीत है। गाड़ी वारसा से अभी कोई ६० मील उत्तर पहुँच पाई थी कि हमारे ऊपर एक जर्मन बमबाज वायुयान मँडराने लगा। वायुयान हमारी गाड़ी के ऊपर बहुत निचाई पर उड़ रहा था इस लिये हम डेढ़ हजार यात्रियों के प्राण अधन्तर हो रहे थे। कितने ही यात्री गाड़ी से कूद-कूद कर जंगलों की ओर भागे। उन्होंने सोचा कि प्राण बच रहेंगे तो कहीं न कहीं शरण मिल ही जायेगी इस अवसर पर कितनों ही की मुखाकृति देखते ही बनती थी। बड़े-बड़े गम्भीर पुरुष उस समय मानसिक दुर्बलता के शिकार हो रहे थे; कुछ जबर्दस्ती अपने मनोभाव छिपा रहे थे, कुछ घबरा कर अट्टहास पूर्वक चिल्ला रहे थे। अबोध शिशुओं के मुख मण्डल पर निरभयता के भाव अवश्य झलक रहे थे; किन्तु माताओं की घबराहट और चिल्लाहट से वह भी रो उठते थे। ट्रेन के संचालक ऐसे संकट के समय गाड़ी को खूब तेजी से चला कर किसी तरह जेरेमचा नामक जंगशन स्टेशन पर पहुँचा दिया।

यहां पहुँच कर हमें जो नारकीय यंत्रणायें भोगनी पड़ीं उन का अनुमान भुक्त भोगी ही कर सकते हैं। अभी हम गाड़ी से उतर भी न पाये थे कि वहां पहले से पहुँचे हुये तीन जर्मन वायुयानों ने हमारी गाड़ी पर पचास बम फेंके। इन में बहुत से बम आग लगाने वाले थे; इस लिये बचने की कोई सूरत न थी- स्त्री पुरुष, बालक वृद्ध सभी वृक्षों से चिपके या खेतों में पटने टेके

इस प्रकार क्षण-क्षण पर प्राण की बाजी लगाने के बाद हमें आने के लिये गाड़ी मिली। बहुत से यात्री भय-वश उस गाड़ी में न बैठे। पोल सरकार के वैदेशिक विभाग के कई अफसर भी वहीं से नौ-दो ग्यारह हो गये।

किन्तु वास्तव में वायुयान यात्रियों पर बम-वर्षा करने नहीं बल्कि स्टेशन को नष्ट करने के लिये बम गिराने आते थे। स्टेशन नष्ट हो जाने पर यात्रा में अपने आप विघ्न पड़ जाता। यदि वायुयान यात्रियों को मारना ही चाहते तो हम में से शायद एक भी बचकर न आता; किन्तु उनका उद्देश्य मुसाफिरों को मारना नहीं था।

विपत्ति वहीं समाप्त न हुई। आगे चलकर उस भूत गाड़ी पर फिर वायुयान मँडराये। बहुत से यात्री रास्ते में उतर-उतर कर खेतों, जंगलों और खाइयों में छिपते जाते थे। एक बार कई वायुयान सिर के ऊपर आ गये। उनके आक्रमण से बचने के लिये स्त्री और बच्चे दलदल के पानी में लेट गये। वायुयान चले जाने पर ही वह वहाँ से उठे। लोग इतने त्रस्त हो गये थे कि जरा-सी आवाज आते ही गाड़ी से कूदने लगते थे। प्रत्येक स्टेशन पर कुछ न कुछ यात्री उतर कर जंगल में जा छिपते थे। पोलैण्ड की सब से ऊँची अदालत हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश या चीफ़ जस्टिस साहब भी मेरे साथ उसी गाड़ी से जा रहे थे। वह भी स्टेशन पर उतर पड़े और बोले कि इस गाड़ी में चलने की

अपेक्षा तो किसी खेत में छिप रहना कहीं अच्छा होगा।'

प्रत्येक बार बम-वर्षा होते ही कुछ लोग गाड़ी से निकल भागते थे। जो पीछे रह जाते वह भी भय वश मृत प्राय से हो जाते थे। स्त्रियों का बिलखना देखा नहीं जाता था। खाद्य-सामग्री समाप्त हो चुकी थी। यात्री भूख-प्यास से पहले ही विक्षिप्त से हो रहे थे। इस संकट के समय उनकी घबराहट उन्माद की सीमा पर पहुँच चुकी थी। बच्चों का भय देखकर हृदय दया से प्लावित हो उठता था। बालक बम से बचने का प्रयत्न स्वयं करते फिरते थे। उनके मुख-मण्डल भय से पीले पड़ चुके थे। उनके रोदन और चीत्कार की ध्वनि मेरे कानों में अब तक गूँज रही है।

"इस प्रकार चार दिन तक हमारी-गाड़ी इधर से उधर चक्कर लगाती फिरी; किन्तु लुबलिन न पहुँच सकी। हमें खबर लगी कि लुबलिन में भी भीषण बम-वर्षा हुई है। हमारी गाड़ी चेलम कोवेल और लक होते हुये अन्त में जेमेनिक पहुँची यहाँ पहुचकर पोल-सरकारके मंत्रियों ने आराम की साँसली पर अभी लोग यात्रा श्रम से सुस्ता भी न पाये थे कि जर्मनी के बमबाज वायुयान वहाँ भी आ पहुँचे। उन्होंने दस बम गिराये जिससे ३१ व्यक्ति मरे। जिस बम से अधिक व्यक्ति मरे थे वह उस मकान के पास ही गिरा था जहाँ मैं सपरिवार ठहरा था। यहाँ से कोई और सवारी न मिलने पर लोगों ने गाँव वालों की गाड़ियाँ किराये पर लीं और उन से जेमेनिक से आगे रूमानिया की सरहद तक पहुँचा देने को

कहा। तीन दिन और तीन रात हम बैल गाड़ियों में जगह-जगह भटकते फिरे। शत्रु के भय से मुख्य मार्ग से तो जा नहीं सकते थे इसलिये छोटी मोटी सड़कों से घूमते-फिरते हम रूमानिया की सरहद की ओर बढ़ रहे थे। इन छोटी सड़कों पर भी जर्मन वायुयानों ने हमारा पीछा किया; किन्तु उन्होंने हम पर बम नहीं गिराया। राह में हमने हजारों शरणार्थियों को रूमानिया की ओर जाते देखा। वह बेचारे वायुयान देखते ही बेतहाशा भागे; किन्तु उन्हें मालूम नहीं था कि वह भाग कर जा किधर रहे हैं। रूमानिया की सरहद के कितने ही इलाके शरणार्थियों के लिये बन्द कर दिये गये थे, इससे बेचारे शरणार्थियों की बुरी दशा थी वह इधर से ऊधर और ऊधर से इधर चक्कर काटते फिरते थे, लोहे के पिंजड़े में फँसे चूहे की भाँति वह इधर ऊधर भागकर जान बचाने के लिये तड़प रहे थे। हमने सिलीशिया और गैलीशिया के ऐसे भी शरणार्थी देखे जो ५०० मील पैदल चल कर रूमानिया की सीमा में प्रवेश करने के लिये आये थे। उनके अस्थि-पंजर मात्र शेष रहे थे—उनके कपोल सूख गये थे और शरीर में रक्त का लेश नहीं मालूम होता था। प्राणों का मोह इतना प्रबल होता है कि वायुयान आते ही यही निर्जीव प्राणी हिरन की तरह भागते थे। बमबाज वायुयानों से जान माल की हानि तो होती ही थी, उससे मानसिक भावनाओं पर भी गहरा असर पड़ता था—लोगों में ऐसा आतंक फैल जाता था कि वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर

१७ वीं सितम्बर को रूसी सेनाएँ जिस प्रकार पोल-सीमा में घुसीं, उसका जानना भी युद्ध और राजनीति के विद्यार्थियों के लिये आवश्यक है। प्रातःकाल ६ बजे ही रूसी फौजें पोलैण्ड में प्रविष्ट हुईं। रूस और पोलैण्ड की ५०० मील लम्बी सीमा पर उस दिन रूसी सिपाही ही सिपाही दिखाई देते थे। पोलोत्सक से दक्षिण में केमीनीज पोडोलोस्क तक पोल-सेना ने रूसी फौज का मुक़ाबला किया। किन्तु विशाल और आधुनिकतम साधनों से सम्पन्न ताज़ी रूसी सेना के आगे उन थके-माँदे, खदेड़े और हारे सैनिकों की क्या बिसात थी। वह रूसी सेना के आगे लड़े भी; पर उनका एक दिन भी टिकना असम्भव था। कहा जाता है कि रूस ने ऐन मौक़े पर अपनी सारी ४० लाख सेना एकत्र करली थी। उसकी विजय सुनिश्चित थी। उसका मुक़ाबिला कोई अकेली शक्ति कर न सकती थी।

रूस ने समय पर जापान से सन्धि करके और भी बुद्धिमत्ता दिखा दी थी। उसे सुदूर-पूर्व में आक्रमण का कोई भी भय न था, इसलिये बड़ी निश्चिन्तता के साथ वह पोलैण्ड के संघर्ष में पड़ सका। उसने उकरैनियनों और श्वेत रूसियों का उद्धार जिस तत्परता के साथ किया, वह राजनीति और युद्धेतिहास में एक स्मरणीय बात थी।

रूस की इस क्रियाशीलता के विरुद्ध साम्राज्यवादी नेताओं और उनके पत्रों ने काफ़ी शोर मचाया। उन्होंने रूस के इस कार्य

को नीति-विरुद्ध, अनुचित और बर्बरता पूर्ण तक कह डालने की धृष्टता कर डाली। पर वास्तव में पश्चिमी उक्रेन की ५० प्रतिशत जनता को पोल सरकार ने शिक्षा से कोरी ही रखा था, और स्त्रियों में तो ७३ प्रतिशत अशिक्षिता थीं; पोलेशिया में ६४ प्रतिशत स्कूल पोलों के थे और १ प्रतिशत रूसियों के। पोलैण्ड के ६७० मध्यमिक विद्यालयों में केवल २६ उक्रेनियन थे तथा एक रूसी। जहाँ ४६।। लाख पोल बच्चों को शिक्षा दी जाती थी वहाँ केवल ५७००० उक्रेनियनों और २००० रूसियों को यह सुविधा प्राप्त हो सकी थी। नोवोग्रुडोक जिले में पोल संख्या में केवल १८ से २० प्रतिशत तक हैं, किन्तु वहाँ के ६६ प्रतिशत स्कूल पोलिश भाषा के हैं।

ऐसी अवस्था में रूस को अपनी भाषा और अपनी संस्कृति तथा किसी समय में अपने देशाधीन प्रदेश पर अधिकार कर लेना किसी भी दृष्टि से अनुचित नहीं कहा जा सकता।

* * *

अस्तु, रूस के प्रसंग को यहीं छोड़ हम पोलैण्ड और जर्मनी के संघर्ष पर आगे विचार करते हैं। २० वीं और २१ वीं सितम्बर को यह समाचार आये कि पोल-सरकार के देशान्तरित होने ही पोल फौजें कुछ तो रूमानिया और हंगरी में जाकर गिरफ्तार हो गईं और कुछ पोलैण्ड में घिर जाने के कारण गिरफ्तार हो रही हैं। जर्मनी ने केवल २० वीं सितम्बर को सवा लाख के लग-

भग पोल सिपाही गिरफ़्तार किये। २१ वीं सितम्बर को ७२००० पोल सिपाही क़ैद किये गये। इस प्रकार पोलैण्ड की सेना का अस्तित्व क़रीब-क़रीब समाप्त हो गया पहले सप्ताह में पोल सेना ने पूरे शौर्य के साथ जर्मन सैन्य का मुक़ाबला किया था; किन्तु जब जर्मन सेना का बल निरन्तर बढ़ता ही गया, और बड़े-बड़े शहर और क़स्बे श्मशानवत् उजाड़ बनने लगे, तो सेना ने भी विरोधी प्रयत्न त्याग गिरफ़्तार हो जाने में ही अपना कल्याण समझा।

पोलैण्ड की राजधानी वारसा के आत्म-समर्पण का जो समाचार अख़बारों से उपलब्ध हो सके हैं उनका सारांश इस प्रकार है—२७ वीं सितम्बर को दोपहर से वहाँ का युद्ध बन्द हो गया है, क्योंकि अब नगर के आत्म-समर्पण आदि के नियम तय किये जा रहे हैं। जर्मन विज्ञप्ति का कहना है कि हमारी सेनायें वारसा के पूर्व उस स्थान को जा रही हैं जहां से रूस वारसा पर अधिकार किया जायगा। यद्यपि पोलों ने वारसा को एक क़िलेबन्द नगर बना दिया था; किन्तु रूसी सेना ने उस क़िलेबन्दी पर अधिकार कर लिया। जब इतना हो गया तो पोल सेनापति ने जर्मन सेनापति से आत्मसमर्पण के नियम आदि तय करने का प्रस्ताव स्वयं किया।

यहाँ यह बात स्मरणीय है कि गत यूरोपीय महासमर में मित्रराष्ट्रों-ब्रिटेन और फ्रान्स ने जर्मनी से अस्थायी सन्धि की जो

शर्तें पेश की थीं वह उसके लिये कैसी विघातक और मित्रराष्ट्रों के लिये कैसी लाभदायक थीं। उस सन्धि प्रस्ताव की ३४ में से कुछ ऐसी धारायें यहां सार रूप में दी जा रही हैं जिन्हें जर्मनी को हेय-तम समझ कर उसे नीचा दिखाने के लिये शर्त के रूप में रखा गया था और जिन्हें वाध्य होकर जर्मनी ने १९१८ ई० की ११ वीं नवम्बर को स्वीकार कर लिया था।

(२) जिन देशों पर आक्रमण हुआ है उन्हें तत्काल खाली कर दिया जाय-- बेलजियम, फ्रान्स, लकसमबर्ग और एलसास-लार्टेन १५ दिन के अन्दर खाली कर दिये जाँय। जो जर्मन सेना इतने समय में इन क्षेत्रों से नहीं हटेगी उसे क़ैद कर लिया जायगा मित्र-राष्ट्र उन तीनों ही क्षेत्रों पर अधिकार कर लेंगे।

(४) जर्मनी को अपनी ५००० तोपें, २५००० मशीनगनें ३००० खन्दक मोटरें और १७०० वायुयान २० दिन के अन्दर समर्पित कर देने पड़ेंगे।

(५) राइन नदी के बायें तट की भूमि जर्मनी खाली करदे और उसे मित्र-राष्ट्रों के आदेशानुसार शासित होने को छोड़ दे। नदी के दाहिने तट पर एक तटस्थ क्षेत्र निर्मित किया जायगा मे स्वीजरलैण्ड की सीमा तक होगा। यहां के निवासियों क्षति न पहुँचायी जायगी, १६ दिन में शत्रु राइनलैण्ड देंगे।

क्षेत्रों को शत्रु खाली करेगा उनके निवासियों को साथ

ा ले जा सकेगा; न उनके धन-जनको कोई हानि पहुँचाई जायगी।

(७) एल्सास रेलवे लाइन की सम्पूर्ण सम्पत्ति तथा ५००० इंजन, डेढ़ लाख डिब्बे (पुर्जों सहित) और ५००० मोटर लारी ३१ से ३६ दिनों के अन्दर मित्रराष्ट्रों को समर्पित कर दी जायँगी।

(८) पूर्वी मोर्चे पर मित्रराष्ट्रों की सेनाएँ डान्जिग या विस्तुला नदी के रास्ते रूस की ओर शान्ति स्थापनार्थ जा सकेंगी। बालटिक तथा समुद्र के प्रवेशद्वार से जर्मन हट जायँगे। जर्मन साल समाप्त होने के पूर्व ही दक्षिण-पूर्व युरोप और रूस के इलाकों से निकल जायँगे।

(१२) जर्मनी, रूस, तुर्की और रूमानिया से अपनी सेनाएँ वापस बुला लेगा और उन्हें अपनी उसी सीमा के अन्दर रखेगा जो उसकी १९१४ ई० की १ ली अगस्त को थी। इसके समय का निर्धारण मित्रराष्ट्र बाद में करेंगे।

(१४) जर्मनी की जो सेनाएँ रूमानिया और रूस में हैं वह वहाँ रसद-पानी न प्राप्त कर सकेंगी

(१६) पूर्व के खाली किये गये क्षेत्र पर मित्र-राष्ट्रों को डान्जिग या विस्तुला होकर प्रवेश करने का अधिकार होगा। इसके अतिरिक्त राइनलैण्ड में मित्रराष्ट्रों की जो सेनाएँ रहेंगी उनका खर्च भी जर्मनी से वसूल किया जायगा।

(१७) रूमानिया और बेलजियम से जर्मनी ने जो सोना लूट लिया है वह उसे लौटाना पड़ेगा।

(३७) जहाजों और उनके सामनों को कोई हानि न पहुंचायी जायगी।

(३८) जर्मन जहाज किसी तटस्थ देश के बन्दरगाह पर न जा सकेंगे। आदि आदि।

इन सन्धि की शर्तों से पाठक समझ सकेंगे कि उस समय जर्मनी पर कैसे घातक प्रतिबन्ध लगाकर मित्रराष्ट्रों ने उसे पंगु-सा बना दिया था। विशेषतः पाँचवीं, और ८ वीं शर्तों से तो जर्मनी को तोड़-मरोड़ कर अशक्त बना देने का प्रयत्न किया गया था। बीस वर्ष बाद अब जर्मनी फिर उस स्थिति को पहुँच पाया जब वह अपने को संकुचित बनाने के कार्य में साधक बने हुये पोलैण्ड से सूद-ब्याज सहित उसका बदला ले सकता था। पोलैण्ड के प्रधान सेनापति ने राजधानी के आत्म समर्पण का प्रस्ताव तो किया; किन्तु तब जब चौबीस घण्टे तक जर्मनी ने वारसा पर अविराम भीषण अग्नि-वर्षा की, और लगभग २०० वायुयानों के अनवरत आक्रमण से सारा नगर भीषण अग्निकाण्ड का शिकार हो गया। तब पोल सैनिक अधिकारियों को होश आया। बड़ी-बड़ी तोपों के गोले बरसने के कारण चारों ओर होलिका-दहन का दृश्य उपस्थित हो गया। जलाभाव के कारण आग बुझाना भी बहुत कठिन हो गया। शहर में खाद्य-सामग्री मिलना असम्भव हो गया। कुछ लोगों ने तोप के गोलों से मरे हुये घोड़ों का मांस तक खाकर क्षुधा शान्त की। किन्तु आत्म समर्पण के पश्चात् जर्मनी ने कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिससे नागरिकों को क्षति पहुँची हो।

स्थिर रखने के लिये यथोचित व्यवस्था कर लेंगे।

पोलैण्ड के सम्बन्ध में बोलते हुये हर-हिटलर ने कहा—"पोलैण्ड में जो शासन इस समय चल रहा था वह ५० वर्ष तक और चलता रहता तो यहाँ जंगलियों का सा शासन रह जाता। पोलैण्ड में कभी सच्चा प्रजातंत्र राज्य स्थापित हुआ ही नहीं-थोड़े से उच्च व्यक्तियों का ही आधिपत्य चलता रहा है। यहाँ की जनता सदा रौंदी जाती रही है। मैंने पोल सरकार के पास अपने उच्च कर्मचारियों द्वारा सन्धि प्रस्ताव भेज भी दिया था; किन्तु पोल सरकार ने उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। मैंने यह भी कह दिया था कि डान्जिग के जर्मनी में मिला लेने पर पोलों की कोई आर्थिक हानि न होगी। यह बातें विनम्रता पूर्वक पोल-सरकार के सम्मुख पेश की गयीं। मैंने पोल प्रजा को युद्ध-विभीषिका से बचाने के लिये यह सब किया था। बसन्त ऋतु के प्रारम्भ में हमने पोलैण्ड सरकार से केवल दो माँग की थीं—पहली यह कि डान्जिग जर्मन सरकार को दे दिया जाय और दूसरी यह कि कारीडोर होते हुये हम एक पथ पूर्वी प्रशिया तक बना सकें। जब पोल सरकार ने मेरे इन प्रस्तावों को घृणा पूर्वक ठुकरा दिया, तब जर्मनी ने कहा कि जर्मन सरकार को अब पोल सरकार युद्ध के लिये उत्तेजित कर रही है। पोल सरकार ने न केवल हमारे प्रस्ताव को ही ठुकरा दिया, प्रत्युत हमसे लड़ने के लिये सैनिक तैयारियां भी आरम्भ कर दीं। उसकी इस तैयारी से जर्मनी भी शंकित हुआ। मैंने पोलैण्ड के परराष्ट्र-सचिव कर्नल बेक से अनु-

रोध किया कि आप डान्जिग और कारीडोर वाले मार्ग के सम्बन्ध में बर्लिन आकर मुझसे बातचीत कर जायँ; किन्तु उन्होंने मेरा यह निवेदन अस्वीकार कर दिया। इसी समय पोल सरकार को जर्मनी के विरुद्ध उभारा गया। उभार ने वालों ने पोलैण्ड की रक्षा की ज़िम्मेदारी भी अपने ऊपर ले ली और कहा कि जर्मनी पोलैण्ड का बाल भी बाँका न कर सकेगा। पोलैण्ड ने भी वह-कावे में आकर युद्ध छेड़ दिया। इङ्गलैण्ड और फ्रान्स ने बाज़ी में पोल सरकार को रखकर उसका बलिदान करा दिया।

"मुझे बृटेन के नाविक सेना सचिव श्री ईडन और सेना-मंत्री श्री डफ कूपर की ओर से बड़ा खटका है, यह बात मैंने पहले ही कही थी। किन्तु उस समय मेरी बात हँसी में उड़ा दी गयी। आज वही बृटेन और फ्रान्स स्पष्ट कह रहे हैं कि वे पोलैण्ड के लिये नहीं; जर्मनी को नीचा दिखाने के लिये लड़ रहे हैं। अगर पोलैण्ड की रक्षा के ज़िम्मेदार अँगरेज़ न बनते और उपर्युक्त बृटिश राज कर्मचारी उसे न उभारते तो आज यह युद्ध होने की नौबत ही न आती। मैंने पोल राजनीतिज्ञों को आमंत्रित किया था कि वह आकर मुझसे मिल जायँ; किन्तु कोई भी मिलने न आया। मुसो-लिनी ने तो युद्ध छिड़ने के बाद भी निर्णय कराना चाहा, और समझौते की शर्तें फ्रान्स ने मान भी ली थीं; किन्तु अँगरेज़ों ने सारा पाँसा पलट दिया। यदि अँगरेज़ इस बीच में न पड़ते तो आरम्भ में ही सारे सङ्कट टल जाते। अँगरेज़ों के भरे में आकर पोल सरकार ने जो मूर्खता की उसका फल उसे मिल गया

वारसा होते हुये विस्तुला और सेन नदियों के संगम तक उसका पूरा अधिकार होगा। सेन नदी के साथ अब रूस की सीमा हंगरी जा मिलगी। इस प्रकार रूस की सरहद रूमानिया और रुथेनिया से भी मिल जायगी। वारसा की बाँट विस्तुला-नदी के द्वारा होगी। इसका बड़ा और महत्त्वपूर्ण भाग बायें या पश्चिमी तट पर होगा। यह भाग जर्मनी को मिलेगा। शहर का पूर्वी हिस्सा या दाहिने तट का भाग रूस के हाथ लगेगा, इस हिस्से में वारसा का उपनगर और प्रागा भी आजावेंगा। दोनों ही देश अब अपनी अपनी नवाधिकृत सीमा पर सैनिक भेज कर कब्जा पक्का कर रहे हैं।

रूस अपनी नवाधिकृत आबादी में 'प्रवदा' पत्र की सहस्रों प्रतियाँ बाँट रहा है। रूसी पोलैण्ड के गाँवों में रूसी किसानों के सुदशा प्रदर्शक चित्रपट (फ़िल्म) दिखाये जा रहे हैं और रूसी राष्ट्रपति स्टालिन के चित्र भी बाँटे जा रहे हैं।

रूस की लाल सेना ने एक वक्तव्य निकाल कर कहा है कि उसने ल्वाऊ, पिन्सक कावेल और फ्रोडेन आदि पर अधिकार जमा लिया है। जहां रूसी सेना भूल से जर्मनी अधिकृत भूमि में प्रविष्ठ हो गई थी, वहाँ से अब वह वापस आरही है।

इस प्रकार जब पोलैण्ड का युद्ध समाप्त हो गया तो उसका बाँट बटवारा हो चुकने के पश्चात जर्मनी और रूस ने अपने-अपने क्षेत्रों में उसके भू-भाग सम्मिलित कर लिये। जब पोलैण्ड का युद्ध समाप्त हो गया और जर्मन फ़ौजों को तूफ़ानी ध

बाद विश्राम का अवसर मिला, तब हिटलर ने अपने भाषण में यह कहा कि युद्ध पोलैण्ड से था और अब वह समाप्त हो गया है। इस सिलसिले में फ्रान्स और बृटेन से जर्मनी की कोई लड़ाई नहीं है, इसलिये अब ये दोनों तो जर्मनी से व्यर्थ लड़ रहे हैं। जर्मन रीश या पार्लियामेंट में भाषण करते हुवे हर-हिटलर ने कहा कि जर्मनी और रूस पोलैण्ड के बारे में किसी का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं कर सकते थे। इस युद्ध का उद्देश्य था युरोप की रक्षा। अब समस्त यूरोपीय राष्ट्रों की एक परिषद् कर निःशस्त्री करण की योजना का रूप तैयार कर लेना चाहिये, जिससे पशु-बल का भय लोगों के हृदय से निकल जाय। बृटेन और फ्रान्स से मेरी और कोई माँग नहीं है। अपने उपनिवेश माँगने के अतिरिक्त मेरा और कोई दावा भी नहीं है। यह दावा भी चुनौती के रूप में नहीं; बल्कि राजनीतिक न्याय की माँग के रूप में होगा। बृटेन ने जर्मनी के हित-विरुद्ध काम किया है; किन्तु जर्मनी ने बृटेन का कुछ नहीं बिगाड़ा। मैं जीवन भर अंगरेजों और जर्मनों में सन्धि का प्रयत्न करता रहा हूँ। पोलैण्ड-विजय के सम्बन्ध में बोलते हुये हिटलर ने कहा कि जर्मन जाति आज अपनी अद्वितीय ऐतिहासिक विजय पर आनन्द मना रही है। पोलैण्ड की ३ करोड़ ५० लाख की आबादी ने अपने चुने ५० डिवीजन या लगभग ७॥ लाख सैन्य द्वारा हमारा मुकाबिला किया। युद्ध आरम्भ होने के एक ही सप्ताह बाद हमारी सेनाओं ने पोल सेनाओं को परास्त करके भगा दिया।

इसके उपरान्त पोलैण्ड की चुनौती से लेकर युद्ध की समाप्ति तक का संक्षिप्त इतिहास बताते हुये हिटलर ने कहा कि एक पक्ष में ही जर्मन सेनाओं ने इतने विस्तृत क्षेत्र पर धावा कर विपक्षियों को हराया और भूमि पर अधिकार जमा लिया है। अब से २५ वर्ष पूर्व यह काम करने में १४ मास से कम समय न लगता; किन्तु हमारी आधुनिक साधन-सम्पन्न सेना ने दो ही सप्ताह में पोलैण्ड की विशाल सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया, और फिर घेर कर बची हुई सेनाओं को क़ैद कर लिया। हमने शान्त हृदय से और बुद्धिमत्ता पूर्वक ऐसा काम किया था कि पोलैण्ड की कुछ सेनायें १ ली अक्तूबर तक मोडलिन, वारसा और हेला में हाथ-पैर मारती रहीं। मैंने अपनी सेना को आदेश दे रखा था कि जब तक अत्यावश्यक न हो रक्तपात से बचा जाय। इस प्रकार एक निश्चित समय के अन्दर किसी भी प्रकार कार्य पूरा करने की योजना होते हुये भी जर्मन सैनिक अधिकारियों को मेरे आदेश और जर्मन जाति की प्रतिष्ठा का ध्यान बराबर बना रहा: अन्यथा हम चाहते तो १० या १२ सितम्बर तक ही वारसा को समाप्त कर सकते थे। कुछ तो पोलों में सद्बुद्धि आने की आशा से और कुछ वहाँ रहने वाले जर्मनों की रक्षा के विचार से ऐसा नहीं किया गया। पोलों ने वारसा की रक्षा का प्रयत्न व्यर्थ ही किया। वारसा स्थित पोलैण्ड के गर्वीले सेनाध्यक्ष ने हमारे इस प्रस्ताव पर भी घृणा प्रकट की कि नागरिक वारसा खाली कर जायें। जो हो, पोल

कोई झगड़ा है ही नहीं। पूर्वी युरोप में सीमाओं की कठिनाइयाँ हल करने के लिये जर्मनी और रूस ने आबादियों के परिवर्तन की योजना बनायी है। इस विषय में रूस और जर्मनी एकमत हैं इसलिये हमें कठिनाई का सामना न करना पड़ेगा।

रूस-जर्मनी की मित्रता का जिक्र करते हुये हर हिटलर ने कहा कि मित्रता का भाव कायम रखते हुये भी दोनों देश अपने-अपने सिद्धान्त पर चल सकते हैं। जब एक देश दूसरे के प्रति प्रतिष्ठा की भावना रखता है तो विरोध भाव अपने-आप दूर हो जा सकते हैं। प्राचीन इतिहास बतलाता है कि यह दोनों देश पारस्परिक सुलह समझौते से अधिक सुखी रहे हैं। जर्मनी की अभिलाषाएँ भी रूस की सी ही हैं। उनकी सीमाएँ भी मिलती हैं।

जर्मनों के जीवन के सम्बन्ध में हिटलर ने कहा कि मेरे नेतृत्व में रीश या जर्मन-पार्लियामेन्ट जर्मनों को जीवन देना चाहती है। जर्मनी और इङ्गलैण्ड के बीच समझौता हुये बिना युरोप में स्थायी शान्ति नहीं हो सकती। आखिर अब हम लड़ किस लिये [illegible] हैं? पोलैण्ड को अब पुनर्जीवित नहीं किया जा [illegible] सन्धि द्वारा बनाया गया पोलैण्ड अब फिर उठ [illegible] संसार के दो महानतम राष्ट्र इसका आश्वासन

सन दे सकते हैं, क्योंकि यही दो राष्ट्र पोलैण्ड की समस्या हल करने के अधिकारी हैं। युरोप भर में शान्ति स्थापित करने के लिये बड़े-बड़े राष्ट्रों की एक परिषद् करनी होगी। इस तरह की परिषद् युद्ध के दबाव के कारण या सैनिक प्रदर्शन के द्वारा नहीं बुलायी जा सकेगी। तोपों की गोलाबारी के साथ इस प्रकार का सम्मेलन होना असम्भव है। अगर श्री चर्चिल इस बात को अस्वीकार करें तो इस सम्बन्ध में भी मेरी यही घोषणा अन्तिम होगी। श्री चर्चिल को इस बात का विश्वास हो सकता है कि इङ्गलैण्ड विजयी होगा; पर मुझे तो दृढ़ निश्चय है कि जीत जर्मनी के सिवा और किसी की हो नहीं सकती। लाखों को मौत के मुँह में झोंकने के पहले यदि शान्ति-परिषद् की जा सके, तो अच्छा ही होगा। पश्चिमी मोर्चे की जो दशा इस समय है वह स्थायी नहीं रह सकती। फ्रान्स सारब्रुकेन को नष्ट कर देगा तो जर्मनी भी मुलहासेन की कोई ईंट समूची न छोड़ेगा। इस तरह तो संघर्ष बढ़ता ही जायगा।

जर्मनी के पड़ोसी देशों की चर्चा करते हुये हिटलर ने कहा कि डेन्मार्क के साथ हमारा मित्रतापूर्ण सहयोग का सम्बन्ध है और हालैण्ड के साथ शान्ति और सुलह का। बेलजियम और स्वीजरलैण्ड से जर्मनी का कुछ नहीं लेना है। युगोस्लाविया और हंगरी की सीमाओं को भी वह इटली की सीमाओं की तरह अन्तिम मानता है। जर्मनी और इटली से तो सीमा-सम्बन्धी

वर्ती उपनिवेशों के लौटाने पर भी विचार किया जाना चाहिये। युद्ध-नीति और युद्ध-शैली में परिवर्त्तन कर ऐसे नियम बनाये जायें जिनसे युद्ध में भाग न लेने वाले निरीह नागरिकों की हत्या न हो। केवल इसी प्रकार यूरोप को सच्ची शान्ति प्राप्त हो सकती है। मैं समझता हूँ कि शायद ही कोई राजनीतिक इन बातों को पसन्द न करेगा। किन्तु यह सब केवल पारस्परिक सहयोग द्वारा ही हो सकता है। यदि यह युद्ध नवीन जर्मनी के निर्माणार्थ जारी रहा तो दोनों ही पक्षों को भारी बलिदान करना होगा और अन्त में नव-जर्मनी का निर्माण होकर रहेगा। मैं अब भी विश्वास करता हूँ कि बृटेन और जर्मनी में शान्ति और समझौता हो सकता है। किन्तु यदि ऐसा न हुआ तो फिर इस संघर्ष का निपटारा शक्ति-द्वारा ही होगा। शान्ति के सम्बन्ध में मेरा यह अन्तिम शब्द है। यदि इस पर विचार न किया गया तो फिर जर्मनी यह युद्ध समाप्त करके ही छोड़ेगा।

लिये जो प्रयत्न किये हैं वह सफल नहीं हुये। इङ्गलैण्ड को अभी पूर्वी देशों तथा फिलस्तीन में बहुत कुछ करना है इङ्गलैण्ड और फ्रान्स से मैं ऐसी कोई माँग भी नहीं कर रहा हूँ जो उनके राष्ट्रीय अस्तित्त्व पर प्रहार करती हो। क्या यह युद्ध राष्ट्रीय समाजसत्ता-वाद का विनाश करने के लिये चलाया जा रहा है। अगर तीन, पांच या आठ वर्ष में इस युद्ध का अन्त भी हुआ, तो क्या फिर दूसरी वर्सेई सन्धि होकर भावी संघर्ष का बीज न बोया जायगा ? यदि श्री चर्चिल का रुख विजय की ही ओर है तो हम लड़ने से मुँह न मोड़ेंगे। जर्मनी पर न तो कोई शस्त्रास्त्र से विजय प्राप्त कर सकता है और न लम्बे समय तक ढील डाले रह कर उसे परेशान किया जा सकता है। १९१८ ई० के नवम्बर मास की पुनरावृति अब न हो सकेगी। जर्मनी का नेता होने के नाते मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि उसने पहले मास में ही न्याय की विजय करा दी है और मैं उस से प्रार्थना करता हूँ कि वह भविष्य में भी हमारा पथ-प्रदर्शन करे।

अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षण की चर्चा करते हुये हिटलर ने कहा कि यह कार्य तो निःशस्त्रीकरण द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है। निःशस्त्रीकरण में सबमरीनें-पनडुब्बी नावें और बमबाज़ वायुयान भी सम्मिलित समझे जायँ जिससे भविष्य में स्त्री-बच्चों पर प्रहार होने का भय जाता रहे। अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् में आर्थिक और व्यापारिक प्रश्नों पर भी बहस हो और साथ ही जर्मनी के पूर्व-

वर्ती उपनिवेशों के लौटाने पर भी विचार किया जाना चाहिये। युद्ध-नीति और युद्ध-शैली में परिवर्त्तन कर ऐसे नियम बनाये जावें जिनसे युद्ध में भाग न लेने वाले निरीह नागरिकों की हत्या न हो। केवल इसी प्रकार यूरोप को सच्ची शान्ति प्राप्त हो सकती है। मैं समझता हूँ कि शायद ही कोई राजनीतिक इन बातों को पसन्द न करेगा। किन्तु यह सब केवल पारस्परिक सहयोग द्वारा ही हो सकता है। यदि यह युद्ध नवीन जर्मनी के निर्माणार्थ जारी रहा तो दोनों ही पक्षों को भारी बलिदान करना होगा और अन्त में नव-जर्मनी का निर्माण होकर रहेगा। मैं अब भी विश्वास करता हूँ कि बृटेन और जर्मनी में शान्ति और समझौता होसकता है। किन्तु यदि ऐसा न हुआ तो फिर इस संघर्ष का निपटारा शक्ति-द्वारा ही होगा। शान्ति के सम्बन्ध में मेरा यह अन्तिम शब्द है। यदि इस पर विचार न किया गया तो फिर जर्मनी यह युद्ध समाप्त करके ही छोड़ेगा।

पोलैण्ड का पुछल्ला

पोलैण्ड की समाप्ति के बाद यूरोप और विश्व की राजनीति पर उसका जो प्रभाव पड़ा वह भी विचारणीय है। पोलैण्ड-विजय के बाद हिटलर ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि अब मेरा ध्येय पूरा हो गया है इसलिये मैं फ्रान्स और बृटेन से व्यर्थ नहीं लड़ना चाहता। पर यदि ये दोनों देश लड़ने ही के लिये लड़ना चाहते हैं तो जर्मनी उन से लोहा लेने के लिये तैयार है। इसके बाद फ्रेञ्च और बृटिश अधिकारियों ने जो घोषणाएं कीं उनसे उनका रुख युद्ध जारी रखने की ही ओर प्रतीत हुआ। हिटलर ने सुलह और शान्ति के लिये जो प्रस्ताव किया था उस पर पानी

किन्तु हिटलर और मुसोलिनी की बातों का जो जवाब वृटिश और फ्रेंच राजनीतिज्ञों और पत्रों ने दिया उससे स्पष्ट हो गया कि अङ्गरेज और फ्रान्सीसी अब युद्ध बन्द न करेंगे। इधर उनके जहाज भी अधिक संख्या में डूबने लगे और उन्होंने अपनी भीतरी तैयारी भी पूरी करली। उन्होंने अपने उपनिवेशों एवं अधिकृत राज्यों को युद्ध संलग्न घोषित करके संघर्ष के लिये अपने को अधिक प्रस्तुत कर लिया।

उधर रूस ने पोलैण्ड में अपना काम बना लेने के बाद रहस्य-पूर्ण चुप्पी साध ली जिससे वृटिश और फ्रेंच-समाचार पत्रों ने यह कहना आरम्भ किया कि रूस की चाल से जर्मनी मात होगया और अब रूस-जर्मनी को कुछ और भी छकाने वाला है। किन्तु वास्तव में रूस किसी और ही योजना में था। वह बाल्टिक और बालकन के छोटे-मोटे राज्यों से भूमि लेकर उन्हें मुआवजे में भूमि तथा रुपये देने की योजना बना रहा था। वृटेन ने यह

इस क़ानून से मुक्त किये जा सकेंगे।

(८) अमेरिकन जहाज केवल छोटे अस्त्र-शस्त्र ही अपने कर्मचारियों पर शासनमात्र करने के लिये रख सकते हैं।

(६) युद्ध-प्रवृत्त देश अपनी जमानत पर अमेरिका से रुपया कर्ज या उधार नहीं ले सकते।

(१०) युद्ध-प्रवृत्त देश अमेरिका से कोई भी माल खरीदेंगे तो उन्हें ६० दिन में उसका मूल्य चुका देना होगा।

इस घोषणा के साथ ही इटली के सर्वस्व सीन्योर-मुसोलिनी ने अपने एक भाषण में कहा कि अब भी इङ्गलैण्ड-फ्रान्स और जर्मनी के बीच समझौता हो सकता है। जर्मनी ने डान्जिग और कारीडोर ले लिया है तो अब यूद्ध हो तो किस बात के लिये? अगर अङ्गरेजों और फ्रान्सीसियों ने जर्मनी के विरुद्ध इस कारण युद्ध छेड़ा है कि उसने पोलैण्ड पर आक्रमण किया है तो अब उनका कर्त्तव्य है कि वह रूस के विरुद्ध भी युद्ध छेड़ दें, अन्यथा इससे तो यह समझा जायेगा कि वह पोलैण्ड को हार्दिक प्रेम नहीं करते। अभी तक युद्धयूरोप भर में व्यापक नहीं हुआ है; पर यदि ऐसा हुआ तो युद्धाग्नि सारे महाद्वीप में भड़क उठेगी। हिटलर का अधिकार जेकोस्लावकिया पर तो रहेगा ही अब पोलैण्ड पर भी रहेगा। जर्मनी की दृष्टि अब अपने खोये हुये उपनिवेशों पर है। मुझे आशा है कि बृटिश सरकार इस बात पर लक्ष्य करेगी।

किन्तु हिटलर और मुसोलिनी की बातों का जो जवाब बृटिश और फ्रेंच राजनीतिज्ञों और पत्रों ने दिया उससे स्पष्ट हो गया कि अङ्गरेज और फ्रान्सीसी अब युद्धबन्द न करेंगे। इधर उनके जहाज भी अधिक संख्या में डूबने लगे और उन्होंने अपनी भीतरी तैयारी भी पूरी करली। उन्होंने अपने उपनिवेशों एवं अधिकृत राज्यों को युद्ध संलग्न घोषित करके संघर्ष के लिये अपने को अधिक प्रस्तुत कर लिया।

उधर रूस ने पोलैण्ड में अपना काम बना लेने के बाद रहस्य-पूर्ण चुप्पी साध ली जिससे बृटिश और फ्रेंच-समाचार पत्रों ने यह कहना आरम्भ किया कि रूस की चाल से जर्मनी मात होगया और अब रूस-जर्मनी को कुछ और भी छकाने वाला है। किन्तु वास्तव में रूस किसी और ही योजना में था। वह बाल्टिक और बालकन के छोटे-मोटे राज्यों से भूमि लेकर उन्हें मुआवजे में भूमि तथा [illegible] देने की योजना बना रहा था। ब्रिटेन ने यह प्रचार करना शुरू किया कि [illegible] रूस ने जर्मनी की चाल विफल करने के लिये ही रूस [illegible] है [illegible] रूस ने जर्मनी से मित्रता करने के बाद [illegible] लिया। जहाजी अड्डा बनाने के [illegible] के जमकर उनके जहाजों को [illegible] बाद से [illegible] सागर [illegible] पड़ने [illegible] ने [illegible] रूस [illegible]

जर्मनी का भी हाथ अवश्य था, क्योंकि यह दोनों सम्भवतः डेन्मार्क और स्वीडन को व्यापारिक दृष्टि से अपने प्रभाव में तभी ला सकते हैं जब रूस अपना कोई बड़ा बन्दरगाह उधर बनाकर उन देशों से मक्खन, चमड़ा, लोहा, लकड़ी आदि कच्चा माल अपने तथा जर्मनी के यहाँ पहुँचा सके। इस प्रकार ये देश बृटेन और फ्रान्स के बदले स्वाभाविकतया रूस और जर्मनी की ओर अधिक झुकेंगे। इसी उद्देश्य को सामने रखते हुये रूस और जर्मनी ने एक नयी व्यापारिक सन्धि भी ८ वीं अक्तूबर को कर डाली।

इधर ६ वीं अक्तूबर को रूसने बाल्टिक राज्य इस्टोविया और लटविया से एक समझौता कर लिया और फिनलैण्ड से भी भूमि के बदले भूमि तथा नक़द रुपये देने का प्रस्ताव कर समझौते का प्रयत्न किया।

किन्तु इसी बीच पोलैण्ड की तरह फिनलैण्ड को भी बहकाया जाने लगा। लिथुआनिया आदि राज्यों ने तो रूसका प्रस्ताव सहज ही स्वीकार कर लिया; पर फिनलैण्ड पोलैण्ड की भाँति दूसरों के भर्रे में आकर अकड़ गया। उसने रूस के प्रस्ताव पर ग़ौर करने के बदले रूस से लड़ने की तैयारी शुरू कर दी। यद्यपि क्षेत्रफल, जन संख्या और सामरिक शक्ति सभी की दृष्टि फिन-लैण्ड की रूस के सामने नगण्य है; पर फिनलैण्ड के 'मित्रलोग' उसे मरवाये बिना कब मानने वाले थे। उन्होंने फिनलैण्ड की

प्रशंसा के राग अलापने शुरू कर दिये। वृटिश और फ्रेंच पत्रों में फिनलैण्ड की वीरता के गीत वैसे ही गाये जाने लगे जैसे पोलैण्ड के गाये गये थे। उसके शौर्य की प्रशंसा की गयी, उसकी अनुकूल प्राकृतिक अवस्था के कारण उसे अभेद्य दुर्ग बताया गया और उसे सहायता पहुँचाने के लिये व्यवस्था की गयी।

फिनलैण्ड के पास केवल तीन डिवीजन पैदल सेना और एक रिसाला था। नाम मात्र के लिये थोड़ी-सी हवाई सेना भी थी; किन्तु इतना अल्प साधन होते हुये भी स्वार्थी शक्तियों ने उसे शय देकर क्रियात्मक संघर्ष के लिये जबर्दस्ती तैयार करने का पुण्यकमा लिया।

अन्तत: फिनलैण्ड ने रूस को युद्ध के लिये बाध्य कर दिया और रूस ने उसकी सभी मोर्चे बन्दियों पर धावा बोल दिया। यद्यपि फिनलैण्ड की अपनी कोई ऐसी शक्ति न थी कि वह रूस का एक सप्ताह तक भी लोहा ले सकता, पर कुछ तो शीताधिक्य से, कुछ फिनलैण्ड के बरफ से भरे क्षेत्रों और उसकी प्राकृतिक अवस्था के कारण और कुछ मित्रराष्ट्रों की सहायता का बल पाकर वह मज़े से महीनों टिका रहा। यद्यपि रूसी सरकार के वक्तव्यों से प्रतीत होता है कि बृटेन और फ्रान्स के बमबाज़ वायुयानों की मदद पाकर भी फिनलैण्ड आत्म रक्षा नहीं कर सका है और रूस ने उसके पास उन सभी दुर्गों पर अधिकार कर लिया है जिन्हें वह पहले मुकाबिले की सुरंग और रसद देकर लेने को

परिशिष्ट

पोलैण्ड की चिनगारी से प्रज्ज्वलित होकर जो आग भड़की उससे अन्तर्राष्ट्रीय जगत् पर क्या प्रभाव पड़। इसका संक्षिप्त परिचय पाठक पा चुके; पर पोलैंड की बदौलत सारे युरोप की विशेषतः बृटेन की राजनीति पर जो वजनदार प्रभाव पड़ा है, उससे भारत की राजनीति कहाँ तक प्रभावान्वित हुई यह जानने के लिये हमें बृटिश अधिकारियों की समय-समय पर की गयी घोषणाओं की ओर ध्यान देना होगा। हर हिटलर की जो वक्तृता पाठक पिछले पृष्ठों में पढ़ चुके हैं उससे सन्धि कामना की जो ध्वनि निकलती थी, उस पर मित्रराष्ट्र बृटेन और फ्रान्स के राज-

नीतिज्ञों और पत्रों ने पूर्ण सन्देह करते हुये अपने विचार प्रकट किये। इस अवसर पर १२ वीं अक्तूबर को बृटिश पार्लियामेण्ट की कामन्स सभा में बोलते हुये प्रधान मंत्री श्री चेम्बरलेन ने जो कुछ कहा है उसका अविकल अनुवाद निम्न लिखित है:—

गत सप्ताह रूस और जर्मनी के समझौते पर बोलते हुये मैंने कहा था, कि कुछ शान्ति-प्रस्ताव आने की सम्भावना है। साथ ही मैंने यह बात भी कह दी थी, कि हम अपने उपनिवेशों और फ्रान्स से तत्सम्बन्धी प्रसङ्ग पर परामर्श कर उस पर विचार कर सकते हैं। उसके बाद जर्मन चान्सलर हर हिटलर का भाषण भी हो चुका और हमने उपर्युक्त दलों से सलाह-मशविरा भी कर लिया। अब मैं श्रीमान सम्राट् की स्थिति वर्णन स्पष्ट रूप से कर देना चाहता हूँ। किन्तु ऐसा करने के पहले मैं पूर्व-घटनाओं का जिक्र कर देना चाहता हूँ। गत अगस्त मास में हमारी सरकार पोलैण्ड के बारे में जर्मन सरकार से पत्र-व्यवहार कर रही थी। वह बात उस समय भी स्पष्ट थी, कि स्थिति गम्भीर है, किन्तु हमारा विश्वास था, कि यदि [illegible] हो तो कोई [illegible] शान्ति-

साथ सुलह-समझौते की बात कर सकते हैं। हरहिटलर ने कहा भी था, कि पोलैण्ड की समस्या सुलझ जाने पर बृटेन ने साफ़ कह दिया था, कि वह पोलैण्ड को दिये हुए अपने वचन का पालन करेगा। प्रत्येक व्यक्ति जानता है, कि हमारे सम्राट की सरकार ने युद्ध टालने के लिये कितने ही प्रयत्न किये और किस प्रकार वह सब व्यर्थ हो गये। गत अगस्त मास में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति मिष्टर रूजवेल्ट, बेलजियम के राजा, नेदरलैण्ड की रानी, ईसाइयों के धर्माचार्य पोप, और सीन्योर मुसोलिनी ने युद्ध रोकने तथा शान्ति स्थापित करने की अपीलें की थीं। यह स्पष्ट था कि हिटलर ने पोलैण्ड पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया था। चाहे बृटेन के साथ समझौता करने की हिटलर की इच्छा सच्ची और हार्दिक ही रही हो, किन्तु वह इच्छा इतनी बलवती न थी, कि वह उसे पोलैण्ड पर हमला करने से रोक सकती।

पोलैण्ड पर जर्मनी के आक्रमण का जिक्र करते हुए चेम्बरलेन ने कहा, कि आज हरहिटलर अपने पोलैण्ड पर किये गये आक्रमण के लिये गर्व प्रकट करते हैं। उनकी बातों से ऐसा मालूम होता है, जैसे उन्होंने अपने वचन का ही पालन किया हो, ... उन्होंने किया उसके बिल्कुल विपरीत है। इस नृशंसतापूर्ण ...ण से कितने ही पोलिश और जर्मनों की जानें गई हैं। यह ...टलर ने अपने हठ-वश और पशुबल के प्रदर्शन के लिये ... हैं और आज वह शान्ति और समझौते का प्रस्ताव रख रहे

१९३८ ई० के सितम्बर में सूडेटनलैंण्ड का प्रश्न हल कर लेने के बाद कही थीं।

जर्मन पारलीमेण्ट या रीश की चर्चा करते हुए मिष्टर चेम्बरलेन ने कहा, कि हिटलर अपने सिद्धान्त और नीति के अनुकूल भी नहीं चल रहे हैं और आज उपर्युक्त बातों के होते हुए भी उन्होंने पोलैण्ड और जेकोस्लावकिया को जर्मन पारलीमेंण्ट या रीश में मिला लिया है। यह उन्होंने अपने बारम्बार के कहे हुये वचनों को भङ्गकर किया है और आज उन्होंने उसी रूस से सुलह कर ली है, जिसके बोलशेविज्म और साम्यवाद की वह घोर निन्दा करते आये हैं। हिटलर के इस बार-बारके वचन-भङ्ग और सहसा नीति-परिवर्त्तन ने उनके समझौते और शान्ति का प्रस्ताव स्वीकार करने में मेरे सामने कठिनाई उपस्थित कर दी है।

आगे चल कर चेम्बरलेन ने कहा, कि सच पूछा जाये, तो गत अनुभवों के आधार पर अब यह सम्भव नहीं है, कि हम जर्मन सरकार में विश्वास करें। हमारी नीति जर्मनी को उसके उचित स्थान से च्युत करने की नहीं; किन्तु यह तभी हो सकता है जब वह युरोप के अन्य राष्ट्रों से मिल-जुलकर रहे और उनका विश्वास- भाजन बन सके। यदि सब देशों के दावों और आवश्यकताओं को न देखा जाये, तो संसार की दुर्दशा का कोई उपाय नहीं हो सकता और न शान्ति स्थापित हो सकती है। सम्राट की सरकार यह विश्वास करती है, कि जब तक कोई समझौता

पारस्परिक विचार-विनिमय के द्वारा न होगा, तब तक भविष्य-उज्ज्वल नहीं हो सकता।

आगे चलकर प्रधान मन्त्री ने कहा, कि हम किसी असहिष्णुता या प्रतीकार की भावना से युद्ध में प्रवृत्त नहीं हुए हैं, बल्कि स्वतन्त्रता रक्षा के लिये आगे बढ़े हैं। आज केवल छोटे राष्ट्रों की ही स्वाधीनता का प्रश्न नहीं, बल्कि बृटेन उसके उपनिवेश, भारत और शेष बृटिश साम्राज्य तथा फ्रान्स को भी खतरा है और उन देशों को भी जोखों है, जो स्वतन्त्रताप्रिय हैं। वर्त्तमान संघर्ष का उद्देश्य चाहे जो हो और उसका अन्त चाहे जिस रूप में हो; किन्तु संसार वही न रहेगा जो आज है। भविष्य की ओर देखते हुये हम कह सकते हैं, कि मानवीय विचार और क्रिया के प्रत्येक क्षेत्रमें बड़े ही गम्भीर चिन्ह अवशिष्ट रहेंगे और यदि नई शक्तियों का संचालन मानवता द्वारा होना है तो प्रत्येक राष्ट्र अपना-अपना कर्त्तव्य पूरा करेंगे। सम्राट की सरकार यह बात अच्छी तरह से जानती है, कि बड़े राष्ट्रों के इस आधुनिक युद्ध में विजेता और पराजित दोनों ही देशों को भीषण कष्ट और क्षति ग्रस्त होना पड़ेगा; किन्तु यदि कुकृत्य के सन्मुख आत्म-समर्पण कर दिया जाय, तो मानव जाति की आशायें लुप्त हो जायेंगी और मानव जाति के विकास की बहुमूल्य निधि लुट जायेगी। हम केवल अपने लिये कोई ठोस लाभ की बात नहीं सोचते। हम जर्मन प्रजा से कोई ऐसी बात नहीं चाहते, जिस से उसकी आत्मप्रतिष्ठा

पर धब्बा लगता हो। हम केवल विजय प्राप्त करने के ही इच्छुक नहीं; बल्कि इस से आगे बढ़ के ऐसी अन्तर-राष्ट्रीय प्रणाली की नींव डालना चाहते हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी लड़ाई के रोकने में समर्थ हो मुझे निश्चय है, कि युरोप के और साथ ही जर्मनी के भी लोग शान्ति चाहते हैं, जिससे वह लोग निःशङ्क होकर अपनी संस्कृति और समृद्धि के विकास में लगे रहें।

आगे चल कर इसी सिलसिले में प्रधान-मन्त्री ने कहा, कि हम जिस शान्ती को प्राप्त करने के लिये दृढ़ निश्चय कर चुके हैं, वह एक वास्तविक और निश्चय शान्ति होनी चाहिये। और वह केवल अस्थायी सन्धि न होकर ऐसी स्थायी शान्ति होना चाहिये जो बार-बार की धमकियों और खतरे की घण्टियों से भङ्ग न होती रहे। इस प्रकार की स्थाई शान्ति के मार्ग में बाधा क्या है? इस में सब से बड़ी बाधा है, जर्मन सरकार। जर्मनी ने ही बार बार आक्रमण कर युरोप को शान्ति भङ्ग कर रखी है और अपने पड़ौसी राष्ट्रों के अस्तित्वतक को आतङ्कित कर रखा है। मुझे प्रसन्नता है, कि सम्राट की सरकार और फ्रान्स की सरकार का इस विषय में एक ही मत है। गत मङ्गलवार को सब ने रेडियो द्वारा फ्रेञ्च प्रधान-मन्त्री दलादियर का भाषण सुना ही होगा। उन्होंने साफ़ कह दिया है, कि हमने आक्रमणकारी के विरुद्ध अस्त्र उठा लिया है और हम उसे जब तक न छोड़ेंगे; जब तक संरक्षण का निश्चित आश्वासन न मिल जाये। किन्तु वह संरक्षक न हो,

जिसे प्रति छः मास पर बदलते रहने की आवश्यकता हो। पोल-सरकार के वैदेशिक मन्त्री भी हमारे इस विचार से सहमत हैं। अन्त में प्रधान-मन्त्री मिस्टर चेम्बरलेन ने कहा, कि मैं सम्राट की सरकार का रुख कुछ ही शब्दों में स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। हर-हिटलर ने जेकोस्लावकिया की तरह पोलैण्ड को भी समाप्त कर देने तक शान्ति स्थापना की प्रत्येक बात को ठुकराया है, और आज अपना आक्रमण पूरा कर उन्होंने शान्ति की बात चीत करने का इशारा किया है। हिटलर ने जो शान्ति प्रस्ताव अपने भाषण में किये हैं, वह अस्पष्ट और अनिश्चित हैं तथा उस में कोई ऐसी परा-मर्श की बात नहीं, जो जेकोस्लावकिया और पोलैण्ड के प्रति की गई भूलों को सुधार सकें। यदि हिटलर के प्रस्ताव अधिक स्पष्टता-पूर्वक भी बताये जाते और उन में भूलों के सुधारने का परामर्श भी होता तो भी यह प्रश्न तो किया ही जाता, कि जर्मन-सरकार अपने किस क्रियात्मक कार्य द्वारा संसार को फिर आक्रमण न करने का विश्वास दिलायेगी ? गत अनुभवों ने हमें सिखाया है, कि वर्तमान जर्मन-सरकार पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इसी लिये हमारे और हमारे साथी फ्रान्सीसियों के सामने शब्दों के बदले कार्य कर दिखाये जावें, तभी हम हथियार रख सकते हैं। जब सँसार को फिर विश्वास हो जाये, कि ऐसी आक्रमणात्मक घट-नाओं की पुनरावृत्ति न होगी और सँसार की समस्यायें सुलझ जावेंगी, व्यापार पूर्ववत होने लगेगा, लोगों के प्राण निःसङ्कट हो

जायेंगे, तभी शान्ति और शुभेच्छा की बातें हो सकती हैं। इस लिये सर्व प्रथम सन्तोष और आश्वासन दिलाने के लिये यही शर्त रखी जाती है। इसकी पूर्ति जर्मन-सरकार ही कर सकती है यदि वह न करेगी, तो संसार को परमवाञ्छित शान्ति प्राप्त न हो सकेगी। बात बिलकुल स्पष्ट है,— या तो जर्मन-सरकार अपनी शान्ति-प्रियता की सचाई का निश्चित और विश्वास जनक क्रियात्मक प्रमाण दे और इस प्रकार अपने वचन पूरे करने की इच्छा भरोसा दिलाये; अन्यथा हम अन्त तक अपनी धुन में लगे रह कर अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे। अब यह बात जर्मनी पर निर्भर करती है, कि वह युद्ध और शान्ति में किसे चुना चाहता है।

इस भाषण का अर्थ स्पष्ट था। बृटेन और फ्रान्स ने हिटलर के शान्ति प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इसके परिणाम स्वरूप पश्चिमी मोर्चे पर युद्ध अधिकतर घनी भूत से उठा। इस के बाद यह अफवाह उड़ायी गई कि जर्मनी अमेरिका के द्वारा सुलह का प्रस्ताव रख रहा है; पर जर्मनी ने साफ़ और स्पष्ट शब्दों में इसका खण्डन कर दिया। जर्मनी ने अपना सन्धि प्रस्ताव विफल होते देख पश्चिमी मोर्चे पर और भी भयानक आक्रमण जारी कर दिया।

भारत पर भी इस युद्ध का सीधा असर पड़ा। इस सम्बन्ध में जब ११ वीं अक्टूबर को दिल्ली से जो समाचार प्राप्त हुये उनका सारांश इस प्रकार है।

भारत-सरकार ने भारत में टेरीटोरियल सेना या अस्था
सिपाहियों की भर्ती शुरू कर दी है। शीघ्र ही यह भारतीय फौ
के लिये स्थायी या नियमित सेना में भी रंगरूट भर्ती करने
योजना कार्यान्वित करेगी। इस योजना द्वारा विभिन्न केन्द्रों
२५००० नये सिपाही भर्ती किये जायेंगे। इसके अतिरिक्त वा
लिटयरों या स्वेच्छासेवकों के लिये भी अपील की जायेगी।

कल रात को लेफ्टिनेण्ट-जनरल सर राजर विल्सन ने मालू
किया है, कि अब तक ३०००० हिन्दुस्थानी सुरक्षित सैनिक दल
जा चुके हैं। भारतीय सेना में १००० सैनिक प्रति दिन प्रविष्ट
रहे हैं। इनमें रंगरूटों के अतिरिक्त शेष सभी सैनिक आवश्यक
के लिये तैयार मिल रहे हैं; जरूरत केवल इस बात की है,
उन्हें शीघ्र ही [illegible] से [illegible] किया जाये।

कि उनके भेजे जानेका असर पहले से कम हुआ है गत महा युद्ध की ही भांति इस बार भी हिन्दुस्थानी सेना आरम्भ में ही मौक़े पर पहुँच गई है। गये युद्ध से हमें सुसंगठित सेना बनाने की शिक्षा मिली थी। युद्ध के समय और उसके बाद भी इस बात का अध्ययन किया गया था और शान्ति के दिनों में जो भर्त्ती और ट्रेनिङ्ग या शिक्षण-व्यवस्था हुई है, उससे रँगरूटों का विभाजन समुचित रूपसे हुआ है और उसका आधार दृढ़तर बन गया है। आज हम अधिक सुसंगठित और अस्त्र-शस्त्र-युक्त होकर जन-नाश की संख्या वृद्धि करने की स्थिति में इसीलिये आ सके हैं। गत महायुद्ध के आरम्भिक मास में जो घबराहट थी; वह आज नहीं। बहुत से लोगों को तो यह पता भी नहीं कि सैनिक तैयारियों के लिये क्या कार्रवाइयां की गई हैं। आज कितने लोग इस बात को जानते हैं, कि युद्ध-घोषणा होने के पहले ही मास में ३०००० सुरक्षित हिन्दुस्थानी सिपाही बुलाये जा चुके हैं और उन्हें पूर्णतः तय्यार कर सैनिक कार्य के लिये उपस्थित कर लिया गया है? यह कार्य तो लगातार दृढ़तापूर्वक जारी रहा है और इधर नये रंगरूट भर्त्ती करने का श्री गणेश भी कर दिया गया है किन्तु वर्त्तमान वैज्ञानिक विधि अनुसार केवल अधिक आदमी भर्त्ती कर लेना ही वाञ्छनीय नहीं है। हम उतने ही सैनिक भर्त्ती करेंगे जितनों के सुव्यवस्थित करने का प्रबन्ध कर सकेंगे। हम देश उद्योग-धन्धों और कृषि में बाधा नहीं डालना चाहते। हमें लगा-

र केवल १००० आदमी प्रतिदिन मिलते रहें, तो यह आरम्भ
ा न समझा जायेगा। युद्ध का मतलब यह नहीं है, कि थोड़े
नों में बहुत से आदमी भर्त्ती कर लिये जायें। मेरी यह बात
वक्त कुछ ही ऐसे उत्साही देशभक्तों तक पहुँच सकेगी जो युद्ध
सेवा कार्य के लिये आतुर होंगे; फिर भी, इस योजना का पता
ब को लग जायेगा, कि रंगरूट भर्त्ती करने के केन्द्र खुल गये हैं,
हाँ रंगरूटों की रजिष्टरी कर उन्हें सैनिक सेवा की शिक्षा प्राप्त
रने के लिये भेजा जायगा। किन्तु किसी व्यक्ति की भर्त्ती, रजि-
री या स्वीकृति का अर्थ यह न होगा कि वह तुरन्त अपना घर
ोड़कर फौज में सम्मिलित होने के लिये रवाना हो जाये; उसे
ो आवश्यकता पड़ने पर ही बुलाया जायेगा। भर्त्ती का ढङ्ग यह
ोगा, कि पहले-पहल २५००० आदमियों को रंगरूट केन्द्रों से
ुलाया जायेगा। रंगरूट भर्त्ती करने वाले अफसरों को भर्त्ती के
रिमाण और अनुपात की सूचना दे दी गई है और वह आव-
यकतानुसार प्रत्येक श्रेणी से रंगरूट भर्त्ती करेंगे। टेरिटोरियल
ा अनियमित सेना में भर्त्ती होने की इच्छा जिन्होंने प्रगट की है;
न्हें विश्वास दिलाया जाता है, कि उनकी सेना की भलाई का
ूरा ख्याल रक्खा जायगा और उनके कामों से पूरी सहानुभूति
क्खी जायेगी।

एक ओर तो यह सैनिक तैयारियाँ की गयीं और भारत को
बरदस्ती युद्ध-प्रवृत्त किया गया और दूसरी ओर भारत की

[illegible] और आदेशों को पूरी तरह से प्रकाशित किया गया। १७ वीं अक्टूबर को सारे [illegible] में [illegible] की हैसियत से जो वक्तव्य प्रकाशित कराया, वह बृटिश नीति का सुन्दर परिचायक है। पाठकों की जानकारी के लिये उसका आवश्यक भाग उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा।

"श्रीमान सम्राट् की सरकार ने अभी तक युद्ध के सम्बन्ध में अपना कोई भी निश्चित ध्येय प्रकट नहीं किया है। इससे स्पष्ट है, कि इस प्रकार के उद्देश्य की परिभाषा और विवरण लड़ाई के अन्त में ही प्रकाशित किये जा सकते हैं। और जब वह समय आयेगा, तो युद्ध में बृटेन का साथ देने वाले किसी एक ही देश का उद्देश्य विवेचित नहीं किया जायेगा। इस गम्भीर स्थिति में जब कि राष्ट्रों का भाग्य खतरे में है, मेरा सभी दलों से निवेदन है, कि वह इस संयुक्त प्रयत्न में साथ दें और सहयोग पूर्वक युद्ध में आगे बढ़ें।

१९३७ ई० के मई मास में श्रीमान् सम्राट् ने मुझे जो अधिकार पत्र गवरनर जनरल की हैसियत से प्रदान किया था; उसमें स्पष्ट रूप से मुझ पर विश्वास करते हुए यह कहा था, कि हमारे साम्राज्य के अन्तर्गत भारत और ग्रेट बृटेन के बीच जो हिस्सेदारी है; ... विकास वहां तक किया जा सकता है; जहां तक भारत को बृटिश उपनिवेशों के अन्तर्गत समुचित स्थान नहीं मिल जाता। बृटिश सरकार की नीति और स्थिति यही है।

अच्छी तरह हो जाता है। उनके भाषण का मर्मानुवाद इस प्रकार है:—

"मैं आज इस भवन के श्रीमान् लार्ड महोदयों से भारत का कुछ हाल सुनाना चाहता हूँ। यह हाल जर्मनी द्वारा पोलैण्ड के आक्रान्त होने के बाद का है। इस युद्ध के उपरान्त ही सम्पूर्ण भारत ने ओर से छोर तक जर्मनी के इस अत्याचार का घोर विरोध किया। गत २६ वीं सितम्बर की अपनी एक वक्तृता द्वारा मैं इस विरोध की सूचना दे चुका हूँ। फिर भी; इस घटना से पहले भारत की सबसे अधिक बलशालिनी संस्था 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' यह तय कर चुकी थी, कि यदि अँगरेज किसी युद्ध में प्रवृत्त होंगे, तो उस समय उसका क्या रुख होगा। इसके उपरान्त गत अगस्त मास में जब भारत सरकार ने भारत-रक्षा का आयोजन किया; तब यह कांग्रेस उस आयोजन से असन्तुष्ट हो गई। उसने केन्द्रीय व्यवस्थापक-सभा के अपने सदस्यों से कहा कि वह भविष्यत् से उस सभा के किसी भी कार्यों में सम्मिलित हुआ न करें।

जिस अयोजन पर कांग्रेस ने यह भाव ग्रहण किया था, वह यह था, कि भारत-सरकार ने अपनी कितनी ही फौजें भारत से अदन, मिश्र और सिङ्गापुर भेज दी थीं। उस समय अन्तर्जातीय परिस्थिति कुछ ऐसी हो गई थी, कि भारत पर पूर्व और पश्चिम दोनों ओर से आक्र[illegible] थे। इ[illegible]ात का बड़ा

सभी बुलाये गये। गत २५ वीं सितम्बर को इस समिति ने अपना निर्णय प्रकाशित किया, जो इस सभा के ध्यान देने योग्य है। इस का अभिप्राय यह है, कि अङ्गरेजों के युद्ध में सम्मिलित होने का अभिप्राय जान लेने के बाद ही भारत उनके साथ सहयोग कर सकता है।

इस अवसर पर कांग्रेस से कुछ कम शक्ति शालिनी मुस्लिम लीग ने अपनी कार्य कारिणी का यह फैसला प्रकाशिक किया, कि दुस्समय में अङ्गरेजों को बिना समझौते के मदद देना चाहिये। इस के उपरान्त भारत के बड़े लाट ने देशी नरेशों और विविध दलों के नेताओं से भेंट और बातें की। बहुतेरे दलों ने अङ्गरेजों को बिना किसी शर्त के सहायता देने का वचन दिया। ऐसी ही भारतीय चित्र की पश्चात भूमि है। अब भारतीय प्रधान चित्र को भी देखना चाहिये। इन में दो ही चित्र प्रधान हैं। एक तो वह, जो बिना किसी समझौता के अङ्गरेजों की जय-जयकार और शत्रु का निपात चाहता है; दूसरा वह, जो अङ्गरेजों से समझौता करने के बाद ही उन्हें सहायता दिया चाहता है। इसी के साथ-साथ पहला चित्र यानी मुसलमान आदि यह भी चाहते हैं, कि हिंदुओं को पूरी सहायता न दी जाये। उन्हें भय है, कि हिन्दू अगर स्वाधीन हो जायेंगे, तो उन पर अत्याचार करेंगे।

आगे चलकर आपने कहा, कि यही हमारी कठिनाईयों का मूल कारण है। यह कठिनाईयां इसलिये और भी गुरुतर हो गई हैं।

कि भारतीय-शासन के सम्बन्ध में विलायत की सरकार ने बहुत बड़ा गुरुभार अपने ऊपर ले लिया है। जो लोग चित्र का एक भाग भाग देखते हैं, वह यही समझते हैं, कि भारत को स्वाधीनता देना बड़ा ही आसान काम है। किन्तु विलायत की सरकार के सामने समूचा चित्र है; इस लिये वही समझ सकती है, कि भारत को स्वाधीनता-प्रदान कितना कठिन कार्य है। इस विषय में मैं और भी कुछ कहा चाहता हूँ। युद्ध आरम्भ होने के बाद से अब तक भारतीय बड़े लाट महोदय ने भारत के कम से कम पचास बड़े-बड़े नेताओं से भेंट और बातें की हैं। इन से यह परिणाम निकाला गया है, कि भारतीय स्वाधीनता के लिये किसी दूसरी ही परिपाटी से काम लेने की आवश्यकता है। इस परिपाटी का आभास भारत में निकलने वाली बड़े लाट की वक्तृता से प्राप्त

पायेंगे और सरकार का काम भी चल जायेगा। जो लोग जिस विषय में राय देने का अधिकार रखते हैं; वह लोग केवल बड़े लाट ही से नहीं; बल्कि आपस में ही मिलने-जुलने का सुअवसर पा जायेंगे। युद्ध में सम्मिलित होने वाले योद्धाओं के सम्बन्ध में वह खुलके राय देने के अधिकारी होंगे।

लार्ड जेटलैण्ड ने कहा,—अन्त में मैं कुछ साधारण बातें कह रखना चाहता हूँ। सन् १९१९ ई० के पारलीमेण्ट के क़ानून के अनुसार डोमिनियन स्वराज्य भारतीय स्वराज्य की चरम सीमा निर्द्धारित की जा चुकी है। उस समय के भारतीय स्टेट सक्रेटरी ने कहा था, कि भारत यदि अपने को इस योग्य बना लेगा, तो उसे औपनिवेशिक ढङ्ग का स्वराज्य प्रदान किया जायेगा। सन् १९३५ ई० के इण्डिया एक्ट या नई शासन-व्यवस्था का अर्थ यह है, कि भारतवासियों में राजनीतिक ऐक्य का ज्ञान उत्पन्न किया जाये। इस व्यवस्था के विरुद्ध बहुत कुछ कहा और सुना गया है। लेकिन यह बात भूलना न चाहिये, कि यह शासन-व्यवस्था भारतवासियों और अङ्गरेज़ों ने मिल के बड़े परिश्रम से तय्यार की थी। उस समय इसका ढांचा मात्र तय्यार हुआ था; किन्तु अब यह शरीर पा रहा है। लोग इसे पसन्द कर रहे हैं। इसी तरह जब इसका फेडरेल अंश चलाया जायेगा, तब भी लोग उसे पसन्द करेंगे।

आगे चल के जेटलैण्ड महोदय ने फर्माया है,—आगे चल

कर लेने से वर्त्तमान भीषण परिस्थिति दूर न हो जायेगी। अङ्गरेज़, हिन्दू, मुसलमान, राजे, नवाब सब को कन्धे से कन्धा मिला के इस परिस्थिति से सामना करना होगा। अगर शत्रु की जीत होगई, तो भारत की क्या दशा होगी? ऐसी दशा में मैं सारे भारत से अपील करता हूँ, कि वह सब अपना भेदभाव भुला के और एक होके अङ्गरेजों की सहायता दें। इस समय हमें भारतीय स्वतन्त्रता के क़ानून-क़ायदों की ओर नहीं; शत्रु के निवारित करने के यत्न की ओर ध्यान देना चाहिये।

इस भाषण को पढ़कर भारत के राजनीतिक आकाश में निराशा के बादल छा गये। कांग्रेस ने प्रान्तों में पदत्याग करने की धमकी दी।

उधर भीषण युद्ध के पश्चात् पोलैण्ड की राजधानी वारसा की जो दुर्गति हुई उसका रोमांचकारी वर्णन पत्रों में इस प्रकार प्रकाशित हुआ:—

"पेरिस से समाचार मिला है, कि पोलैण्ड राजधानी वारसा नारकीय दुर्गति प्राप्त हुआ है। लोग खाद्य के अभाव से कुत्तों का मांस खाते हैं। बाजार में कुत्तों की बड़ी माँग रहती है। प्रत्येक कुत्ता कोई साढ़े सात रुपये पर बिकता है। नगर की अधिकांश बड़ी-बड़ी इमारतें और सुन्दर शाहराहें नष्ट हो गई हैं। ट्रामें बन्द होगई हैं; जल कल टूट गई हैं और बिजली-घर वीरान पड़ा हुआ है। नगर की कुल दूकानें बन्द रहा करती हैं। केवल एक राह है,

जिसमें कुछ बस-गाड़ियां दौड़ा करती हैं। पोल अखबार निकलने नहीं पाते; केवल जर्मन समाचार-पत्र निकल रहे हैं। नगर के मेयर तथा उनके साथियों ने अन्त तक युद्ध किया था। यह सब क़ैदखाने में बन्द कर दिये गये हैं; रुपये देंगे, तो छोड़े जायेंगे। सारे नगर में मौत जैसा सन्नाटा छाया हुआ है। रात को जर्मन सन्तरी आईन भंग करने वालों पर तमंचे चला दिया करते हैं।"

इधर जर्मनी ने पश्चिमी मोर्चे का आक्रमण जब और विकट कर दिया, तो वृटिश सरकार के इशारे पर भारत के वाइसराय ने गाँधी जी को बातचीत करने के लिये आमंत्रित किया। यद्यपि इस समय कांग्रेसी मंत्रि-मण्डलों ने इस्तीफे देने शुरू कर दिये थे; किन्तु फिर भी गाँधी जी ने आशावाद में आकर बड़े लाट से सहयोग और समझौते पर बातें कीं। परिणाम न कुछ निकलना था; न निकला।

इसके पश्चात् वृटिश सरकार की ओर से सर सैमुएलहोर ने जो घोषणा की वह इस प्रकार है:—

आपको मिष्टर वेजउड बेन बता चुके हैं, कि भारत के बड़े लाट ने वहां के नेताओं से मुलाक़ात की है। उसके परिणाम स्वरूप उन्होंने दो निश्चित प्रस्ताव किये हैं। पहला तो एक वादे के रूप में है, जिसमें कहा गया है, कि हाल के वर्षों का अनुभव करते हुए वैधानिक समस्या पर पुनर्विचार किया जाये। दूसरा प्रस्ताव यह है, कि भारतीय नेताओं पर अपना विश्वास जमाने के

लिये बड़े लाट एक परामर्शदाता समिति बनायें जिससे युद्ध से उत्पन्न समस्याओं पर वार्तालाप हो सके और बड़े लाट भारतीय लोकमत के सम्पर्क में रह सकें। इस समिति का निर्माण इस इच्छा से आयोजित हुआ है कि इससे प्रमुख भारतीय सार्वजनिक संस्थाओं का सहयोग भी प्राप्त हो सके। यह मानी हुई बात है, कि कांग्रेस भारत में सब से बड़ी संस्था है और उसने इस नव-आयोजित समिति में भाग लेने से इन्कार कर दिया है; किन्तु ग़ैर-कांग्रेसी भारतीय जिनकी संख्या करोड़ों है इस समिति में सहयोग देने की बात सार रूप से स्वीकार कर चुके हैं।

आगे चलकर सर होर ने औपनिवेशिक स्वराज्य की चर्चा करते हुए द्राविड़ी प्राणायाम सा करते हुए उलटी दिशा से नाक पकड़ी है। आपने कहा [illegible] कि औपनिवेशिक स्वराज्य और भारत के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार की नीति अनेक बार विघोषित की जा चुकी है और हम अब भी लार्ड इर्विन द्वारा की गई घोषणा [illegible] का समर्थन करते [illegible] कि औपनिवेशिक स्वराज्य का [illegible] अन्य [illegible] स्वरा- [illegible] तब यह नहीं [illegible] भारत [illegible] औपनिवेशिक [illegible] देशों की बराबरी [illegible] [illegible] अर्थ [illegible] विघोषित [illegible] जो [illegible] त [illegible]

मौजूद मिलेंगे; तभी वह ध्येय प्राप्त किया जा सकता है। यदि उसके मार्ग में कुछ कठिनाइयां हैं, तो वह हमारी पैदा की हुई नहीं; वह तो उस विशाल देश भारत की विभिन्न जातियों और श्रेणियों में परम्परा से विद्यमान हैं। उन्हें दूर करना स्वयं भारतीयों का ही काम है। हमारा काम मात्र भारतीयों को सहायता देना है। हमने साम्प्रदायिक विषय का निर्णय करने में उन्हें सहायता पहुंचाई है यदि साम्प्रदायिक निर्णय न होता, तो प्रान्तीय स्वायत्त शासन भी प्रदान न किया जा सकता था।

किन्तु हमारे इतना मदद देने पर भी साम्प्रदायिक मतभेद अभी जारी ही है और जब तक वह दूर नहीं हो जाता; तब तक हम अल्पसंख्यकों के प्रति अपने कर्तव्य से मुँह नहीं मोड़ सकते। १९३५ ई० में हमारी जो स्थिति थी; वही आज भी है। इस साम्प्रदायिक विभिन्नता के कारण ही हम केन्द्र में अभी उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित कर अखिल भारतीय संघशासन का आदर्श प्राप्त नहीं कर सके हैं।

देशी रियासतों के सम्बन्ध में बोलते हुए आपने कहा, कि [illegible] देशी नरेश ब्रिटिश भारत का औपनिवेशिक स्वराज्य [illegible] हैं। मुसलमान केन्द्र में हिन्दू [illegible] हैं। अछूतों तथा अन्य अल्पसंख्यकों का [illegible] है, कि [illegible] इस प्रकार की विभिन्न [illegible] उपस्थित हैं; तब

करने से फल स्वरूप वैधानिक विकास के लिये मैदान तैयार हो सकेगा। मैं समझता हूँ, कि समिति के इस कार्य का महत्व समझा नही गया। भारत की साम्प्रदायिक विभिन्नता मिटाने के लिये यह समिति पुल का काम देगी। युद्ध के बाद विधान पर भी विचार हो सकेगा। यह दुःख की बात होगी, कि समिति के इस कार्य को आरम्भ ही न किया जाये। माण्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड की सी बातें और विधान सम्बन्धी बहसें इस युद्ध में नही हो सकतीं।

चुनाव नहीं होगा

मिष्टर वेजुउड वेन के भारत में नये चुनाव करने की बात पर मैं इतना ही कहूँगा, कि किसी युद्ध के आरम्भ में चुनाव की चर्चा नहीं हुआ करती। भारत के अधिकारी दिन-रात युद्ध-सम्बन्धी कार्यों में व्यस्त हैं। चुनाव से तो साम्प्रदायिक भावनायें और भी जोर पकड़ लेंगी। ऐसी अवस्था में भारत की केन्द्रीय व्यवस्थापक-सभा का नया निर्वाचन करना भी असम्भव ही होगा।

संघर्ष नहीं चाहते

मुझ से कहा गया है, कि भारत के कुछ क्षेत्रों में बृटिश सरकार पर संघर्ष ढूंढने का आरोप किया जा रहा है। मैं इस बात का जोरदार खण्डन करता हूं। बृटिश सरकार सहयोग चाहती है, संघर्ष नहीं। बृटिश सरकार अपनी नीति के उद्देश्य की पूर्ति चाहती है और वह भारत को अपने उपनिवेश के अन्तर्गत स्वतन्त्र लोगों का देश देखना चाहती है। असहयोग से वह समय कहीं

हूँ, कि समझौते का दर्वाज़ा बन्द न होते हुए भी यह बात समझ ली जाये, कि इस युद्ध के संकट-काल में हम भारत के लिये दूसरा विधान तय्यार नहीं कर सकते; क्योंकि इस कार्य में हमें बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। रही परामर्शदायक समिति, सो उसका निर्माण या तो विरोध की दिशा बदलने के लिये या फिर वास्तविक सहयोग प्राप्त करने के लिये होगी।

मेरे ख़याल में कांग्रेस ने जल्दबाज़ी में यह धारणा बनाली है, कि बड़े लाट की परामर्शदायक-समिति कुछ भी न होगी और उसका काम केवल वैधानिक प्रगति को स्थगित करना मात्र होगा। किंतु देशी नरेश, मुसलमान तथा अन्य अल्पसंख्यक जातियां ऐसा नहीं समझतीं। उनका विश्वास है, कि इस प्रकार की संस्था भारत के लिये बड़ी हितकर सिद्ध हो सकती है और वह भारत को उत्तरदायित्व पूर्ण शासन की ओर ले जायगी। मैं समझता हूँ, कि काँग्रेस ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर बड़ी जल्दबाज़ी से काम लिया है। उसे तथा अन्य राजनीतिक नेताओं को चाहिये, कि वह इस समिति के कार्य और मदस्यों के प्रति अपना सन्देह दूर कर दें। यदि वह ऐसा करेंगे, तो उन्हें मालूम होगा, कि वायसराय भारतीय नेताओं पर विश्वास करने को तैयार हैं और इस समिति के द्वारा युद्ध सम्बन्धी तथा अन्य कई समस्याओं पर महत्व पूर्ण निश्चय होंगे। इसके अतिरिक्त बृटिश और भारतीय भारत के प्रतिनिधियों के एक जगह पर बैठकर विचार

करने से फल स्वरूप वैधानिक विकास के लिये मैदान तैयार हो सकेगा। मैं समझता हूँ, कि समिति के इस कार्य का महत्व समझा नही गया। भारत की साम्प्रदायिक विभिन्नता मिटाने के लिये यह समिति पुल का काम देगी। युद्ध के बाद विधान पर भी विचार हो सकेगा। यह दुःख की बात होगी, कि समिति के इस कार्य को आरम्भ ही न किया जाये। माण्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड की सी बातें और विधान सम्बन्धी बहसें इस युद्ध में नहीं हो सकतीं।

चुनाव नहीं होगा

मिष्टर वेजुउड बेन के भारत में नये चुनाव करने की बात पर मैं इतना ही कहूँगा, कि किसी युद्ध के आरम्भ में चुनाव की चर्चा नहीं हुआ करती। भारत के अधिकारी दिन-रात युद्ध-सम्बन्धी कार्यों में व्यस्त हैं। चुनाव से तो साम्प्रदायिक भावनायें और भी जोर पकड़ लेंगी। ऐसी अवस्था में भारत की केन्द्रीय व्यवस्थापक-सभा का नया निर्वाचन करना भी असम्भव ही होगा।

संघर्ष नहीं चाहते

मुझ से कहा गया है, कि भारत के कुछ क्षेत्रों में वृटिश सरकार पर संघर्ष ढूंढने का आरोप किया जा रहा है। मैं इस बात का जोरदार खण्डन करता हूँ। वृटिश सरकार सहयोग चाहती है, संघर्ष नहीं। वृटिश सरकार अपनी नीति के उद्देश्य की पूर्त्ति चाहती है और वह भारत को अपने उपनिवेश के अन्तर्गत स्वतन्त्र लोगों का देश देखना चाहती है। असहयोग से वह समय वर्षों

पीछे हट सकता है। चाहे असहयोग के प्रवर्त्तक ऐसा चाहें या नहीं; पर असहयोग से सत्याग्रह पर नौबत आती है और उसके बाद क़ानून और शान्ति भङ्ग होकर दंगे और दमन का दौर शुरू होता है। ऐसी अवस्था में हम असहयोग को विपज्जनक और व्यर्थ समझते हैं। भारत के देशी राज्यों में रहने वाली तथा वृटिश भारत की करोड़ों प्रजा इस बात से सहमत हैं। वह हमसे सहयोग करना चाहती हैं और तीन दिन पूर्व गांधी जी के कथनानुसार कांग्रेस भी वृटेन को अपना विशिष्ट नैतिक सहयोग देने जा रही थी; पर अब कांग्रेस वृटेन की नैतिकता की परीक्षा लिये बिना वह सहयोग नहीं दिया चाहती।

साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा

मैं इस बात का दावा करता हूँ, कि हमारी स्थिति पूर्णतः दृढ़ है। हमने भारत को बड़े सद्विश्वास के साथ ऐसा सुन्दर विधान दिया था, कि उससे सुन्दर संसार ने कभी देखा भी न था। साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा का परित्याग तो हमने बहुत पहले ही कर दिया है। संसार में हमारा उद्देश्य दूसरी जाति के लोगों पर शासन करना नहीं; बल्कि उन्हें स्वशासन में सहायता देना है। इसी भावना से पारलीमेण्ट ने उपनिवेशों को स्वतन्त्र-शासन-विधान देने के विधान पास किये हैं। और इसी भावना से १९३५ ई० का भारत-शासन विधान भी पास किया गया और हमने स्वेच्छापूर्वक भारत-सरकार को व्यापक शासनाधिकार प्रदान कर दिये।

युद्ध-काल में हम भारत की विभिन्नताओं को दूर करने की आकांक्षा रखते हैं और जब युद्ध समाप्त होगा और हमारी विजय के साथ समाप्त होगा, तो सारे साम्राज्य के संयुक्त प्रयत्नों का लिहाज़ रखते हुए विधान-सम्बन्धी उन कठिनाइयों को शीघ्र हल करने का प्रयत्न करेंगे, जो अनुभव में आई हैं। असहयोग से इस विकास में बाधा पड़ेगी। संघर्ष, विरोध और असहयोग का दूसरा अध्याय दुःखान्त मूलक होगा और संसार की इस महान घड़ी में जब हम पशुबल का मुक़ाबिला करने जा रहे हैं, इतिहास का एक काला पृष्ठ होगा।

अन्तिम अपील

अन्त में सर होर ने अपील करते हुए कहा, कि नवीन संसार में भारत को बहुत बड़ा काम करना है। बृटिश साम्राज्य की अन्य जातियों में एशिया का यह सबसे विशाल देश बराबरी का पद प्राप्त करेगा। व्यापक संसार में भी उसे बहुत बड़ा कार्य करना है। वह राष्ट्रसङ्घ का एक आदर्श बन कर संसार को युद्ध के अन्त तथा न्याय की विजय का पथ दिखा सकता है।

इस बीच भारत के आठो कांग्रेसी प्रान्तों से कांग्रेसी सरकारों ने इस्तीफे दे दिये। युद्ध के कारण केन्द्रीय सरकार ने जब प्रान्तीय सरकारों का नाममात्र का अधिकार भी अपहृत कर लिया, तो कांग्रेस को यह बात सहन नहीं हुई। फलतः उसने अपने द्वारा युद्ध में भारत को शोषित होने देखना उपयुक्त नहीं समझा।

सम्बन्ध में की गई लार्ड स्नेल और लार्ड सैमुएल की बहसों और भाषणों का जो जवाब दिया वह भी पठनीय है। उसका भावानुवाद इस प्रकार है:—

इन दिनों भारत मन्त्री को ऐसी दुःखद परिस्थितियों से होकर गुजरना पड़ रहा है, कि उसे सदा हतोड़े और निहाई के बीच में ही रहना पड़ता है। लार्ड सेलसबरी ने भारत के १९३५ ई० के विधान की बुद्धिमता में सन्देह किया है। उन्होंने विधान के कार्य रूप में परिणत करने के बारे में पहले से ही सच्चाई के साथ सन्देह प्रकट किया था। हम उनके विश्वास की मर्यादा करते हैं। मेरा उनके साथ पहले भी मतभेद रहा है और अब भी है। मुझे यह कहना पड़ रहा है, कि विधान के जिन अङ्ग के अनुसार प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों का निर्माण हुआ था, उनका कार्य तीन वर्ष के अल्प समय में ठीक तौर से हुआ है।

लार्ड सेमुएल ने फेडरेशन या सङ्घ-शासन-योजना के सम्बन्ध में कहा है, कि उन्होंने अपनी भारत-यात्रा में सर्वत्र इस बात पर एकमत पाया है, कि केन्द्रीय सरकार का निर्माण सङ्घ शासन-योजना या फेडरेशन के अनुसार होना चाहिये और १९३५ ई० के भारतीय विधान के फेडरेशन या सङ्घीय अंश के विशिष्ट रूप के सम्बन्ध में विभिन्न दलों ने अपनी-अपनी आपत्तियां प्रकट की हैं। जो हो, लार्ड सेमुएल फेडरेशन को केन्द्रीय सरकार के लिये आवश्यक मानते हैं और यह भी कहते हैं, कि हमने भारत को

औपनिवेशिक स्वराज्य देने की प्रतिज्ञा की है; किन्तु उसे पूरी नहीं कर रहे हैं। लार्ड सेमुएल के भाषण से ऐसा मालूम होता है, कि यदि हम चाहें, तो कल ही भारत को फेडरेशन और औपनिवेशिक स्वराज्य दे सकते हैं।

लार्ड सेमुएल ने यह भी कहा है, कि १६२६ ई० में वैदेशिक सचिव ने भारत के लिये स्वाभाविक औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करने का वचन दिया है। क्या इसका यह मतलब है, कि अङ्गों की तय्यारी हुए बिना ही फेडरेशन या सङ्घशासन क्रियात्मक रूप धारण कर सकता है। आपने यह भी कहा है, कि हमने १६३५ ई० का भारतीय शासन-विधान तय्यार करने में बहुत देर कर दी है। यह सच है; परन्तु यदि आज ज्वाइण्ट सिलेक्ट कमिटी और गोलमेज परिषद् के सदस्य होते, तो आज वास्तविकता का अधिक स्पष्ट अनुभव रखते और यह जानते होते, कि हमें कैसी असाधारण कठिन उलझनों और समस्याओं को सुलझाना पड़ा है।

वायसराय की घोषणा का हवाला देते हुए आपने कहा, कि उन्होंने युद्ध का अन्त होने पर सम्बद्ध सम्प्रदायों और हितों के नेताओं के परामर्श से सङ्घीय योजना में कुछ वाञ्छनीय रूपान्तर करने पर विचार करने की जो बात कही है, वह पर्याप्त है। किन्तु युद्ध समाप्त होने से पहले हम और क्या क्या करेंगे इसके सम्बन्ध में उन्होंने बहुत थोड़ा कहा है। यदि वह यह समझते हैं

कि जीवन-मरण के संघर्ष में लगे रह कर भी हम फेडरेशन या सङ्घ योजना को फिर से तय्यार कर सकेंगे और संङ्घ शासन को क्रियात्मक रूप दे सकेंगे, तो मैं उनसे सहमत नहीं हो सकता। किन्तु हम वायसराय की यह बात मानते हैं, कि युद्ध जारी रहने की अवस्था में भी हम भारतीय नेताओं को केन्द्रीय सरकार से किसी न किसी तरह सन्बद्ध रखें। इसी दृष्टि से परामर्श-समिति के निर्माण का प्रस्ताव हमने किया है।

युद्ध के सन्बन्ध में भारतीय नेताओं का केन्द्रीय सरकार से संसर्ग और सहयोग रखने का प्रयत्न हार्दिक एवं सच्चा है। इससे तीन सुविधायें होंगी पहले तो यह, कि गवरनर जनरल अर्थात् बड़े लाट राजनीतिक संस्थाओं के नेताओं को गुप्त सूचनायें दे सकेंगे। दूसरी सुविधा यह होगी, कि नेतागण बड़े लाट के सन्मुख नये क़ानूनों के निर्माण के बारे में अपनी खरी और सच्ची राय निर्भीकता पूर्वक प्रकट कर सकेंगे और दोनों ही पक्ष से युद्ध को सफलता पूर्वक सञ्चालित करने के लिये पारस्परिक सहयोग होगा। तीसरी सुविधा यह होगी, कि सभी सम्प्रदाय के लोग उस परामर्श समिति में होंगे और वह बड़े लाट के साथ निकट सम्बन्ध में आ सकेंगे। साथ ही वह परस्पर भी एक दूसरे के अधिक निकट आ सकेंगे और उनके मतभेद घट सकेंगे। इससे उन्हें अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान के लिये आमन्त्रित किया जा सकेगा। मुझे खेद है, कि यह प्रस्ताव भारत में उस

भाव से स्वीकार नहीं किया गया, जिस भाव से वह किया गया जिस भाव से वह किया गया था। साम्प्रदायिक मतभेद लगातार जारी हैं। आप सभी इस बात से परिचित ही हैं। अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की घोषणा और कांग्रेस का वक्तव्य दोनों श्वेतपत्र में प्रकाशित हो चुके हैं। उसके बाद मुस्लिम लीग के नेता मिष्टर जिन्ना ने 'मांचेष्टर गार्जियन' में वक्तव्य प्रकाशित कराया है।

"मुझे लार्ड सेमुएल की तरह इस बात का खेद है कि प्रान्तीय कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफे दे दिये हैं। यह बड़ी ही दुर्भाग्य पूर्ण कार्यवाही हुई है और इतिहास सिद्ध करेगा, कि यह एक भारी भूल की गई है। इस काम में अनुचित जल्दबाजी से काम किया गया है; क्योंकि अभी बातचीत जारी ही थी, कि चार प्रान्तों के मन्त्रिमण्डलों ने इस्तेफे दे दिये। पांचवें प्रान्त का इस्तीफा भी शीघ्र ही पेश होने वाला था इसका मतलब यह हुआ, कि सरकार को बाध्यतः शासन विधान के प्रान्तीय अंश को भङ्ग करना पड़ेगा और प्रान्तों का शासन अपने हाथ में लेना पड़ेगा। साम्प्रदायिक कठिनाइयों के सम्बन्ध में भी मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

"साम्प्रदायिक दुर्भावना बृटिश भारत से अभी तक दूर नहीं हुई है। किन्तु देशी राज्यों में इस समस्या का अस्तित्व नहीं, लार्ड सेमुएल की यह बात मैं नहीं मान सकता। जिस हैदराबाद

का उदाहरण उन्होंने दिया है; उसमें गत ग्रीष्मकाल में कई महीने तक हिन्दुओं ने सत्याग्रह आन्दोलन चलाया। इस प्रकार मुस्लिम राज्य के विरुद्ध हिन्दुओं ने अन्य प्रान्तों से जाकर भी आन्दोलन किया और वहाँ साम्प्रदायिक समस्या को विकट रूप दे दिया। हाँ, उक्त रियासतों में साम्प्रदायिक समस्या कई वर्षों से नहीं उठी है।

"भारत में कभी-कभी यह कहा जाता है कि हम उस देश में साम्राज्यवाद जारी रखने के लिये युद्ध कर रहे हैं। यदि इस 'साम्राज्यवाद' का अर्थ है, एक जाति पर दूसरी का जबर्दस्ती अधिकार और शोषण; तो मेरा यह कहना है कि यदि ऐसे साम्राज्यवाद का अस्तित्व कभी था भी, तो पार्लामेण्ट ने उसे १९१९ ई० के एक्ट द्वारा ही त्याग दिया है और इस बात पर जोर दिया जा चुका है कि इस देश के निवासी भारत को स्वशासन देने का निश्चय प्रकट कर चुके हैं। १९३५ ई० का विधान देने के बाद भारत में साम्राज्यवाद जारी रखने की बात कैसे कहा जा सकता है? १९१९ ई० के एक्ट के बाद हमारी [illegible] भारत के सम्बन्ध में स्पष्ट हो गई हैं [illegible] हमने भारत को [illegible] [illegible] किया है। उसकी प्रगति के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों [illegible] को दूर करने का प्रयत्न हम सच्चे हृदय से कर रहे हैं [illegible]

हुआ है; उसके आधार पर मैं तो यही कहूंगा, कि हमारे मार्ग में आने वाली कठिनाइयों की उपेक्षा करने से कोई लाभ न होगा। आप धैर्य पूर्वक और सच्चे हृदय से उन्हें दूर करने का प्रयत्न कर सकते हैं।

इसके पश्चात् भारत की राष्ट्रीय महासभा जब अपना स्वतन्त्रता का दावा दृढ़ता रूप में पेश करती ही गयी तो। उधर जर्मन माइनों ने दस जहाज डुबो दिये। पश्चिमी मोर्चे का संघर्ष बढ़ गया।। इधर फ़नलैएड की सरकार में भी दो दल हो गये, जिनमें से एक को रूस ने मान्य क़रार दिया और दूसरी को वृटेन और फ्रान्स ने। रूस ने और भी विकट आक्रमण किया और युद्ध प्रवृत्त फ़िनिश सरकार ने मदद के लिये चीख़-पुकार मचाई। जर्मन चुम्बकीय बम या माइनों द्वारा संहार-कार्य और भी बढ़ गया।

रूस से वृटिश सरकार की जो तनातनी पोलैएड और फ़िनलैएड के कारण हो गयी उससे भारतीय सीमा पर आक्रमण की आशंका और अधिक बढ़ गई।

इधर बम्बई में भारत के वायसराय साहब ने एक और भाषण दिया जिसमें आपने कुछ मीठे शब्दों का भी सम्मिश्रण कर दिया। भाषण का अनुवाद निम्न लिखित है:—

बम्बई के 'ओरियएट क्लब' में भारत के बड़े लाट लार्ड लिनलिथगो ने जो भाषण किया है, उसका सार मर्म इस तरह है:—

जब हम लोग गत बार यहां एकत्र हुए थे, तब से अनेक

घटनायें हो चुकी हैं। पहली बात जो सब के मस्तिष्क में होगी, वह है युद्ध का आरम्भ। उसके अच्छे और बुरे परिणाम हमारे सामने हैं। जहां तक भारत का सम्बन्ध है, उसने इस सम्बन्ध में वास्तव में प्रतिष्ठाजनक उत्तर दिया है। मेरे पास धनजन और सामग्री की सहायता के प्रचुर प्रस्ताव आये हैं और इस युद्ध की वर्त्तमान परिस्थिति के अनुसार इन दयालुतापूर्ण प्रस्तावों से पूर्ण क्रियात्मक लाभ भी उठाया गया है। मेरे लिये यह बड़ी ही प्रसन्नता की बात है, कि न केवल ब्रिटेन में, बल्कि सारे साम्राज्य में भारत की इस सहायता की मर्यादा की गई है। मुझे प्रसन्नता है, कि हमारे युद्ध-सम्बन्धीय प्रयत्नों की महत्ता को अच्छी तरह समझ लिया गया है। फिर भी, हमें इस दिशा में बहुत कुछ करना है। हमें बहुत सी कठिन और बड़ी परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा। असली कसौटी तो अभी आगे आने वाली है। किन्तु हमने भारत में युद्ध की जो आरम्भिक तैय्यारियां कर ली हैं, उनकी नींव सुदृढ़ है, अतः मित्रराष्ट्रों की स्थिति दिन पर दिन दृढ़ तर होती जा रही है और शत्रु की शक्ति तीव्र गति से ह्रासोन्मुख होती जा रही है।

योजना को अविलम्ब कार्यान्वित करने के महत्व पर भी कुछ शब्द कहे थे। किन्तु आज हम नितान्त भिन्न परिस्थिति में यहां एकत्रित हुए हैं। मुझे खेद के साथ कहना पड़ रहा है, कि इस प्रान्त में स्वायत्त शासन के परिचालन में बाधा उपस्थित हो गई है। व्यवस्थापक सभा के बहुमत का समर्थन-प्राप्त मन्त्रिमण्डल अब भङ्ग हो चुका है और प्रान्त का शासन १९३५ ई० के विधान की विशिष्ट धारा के अनुसार संचालित हो रहा है।

दुःखद अवस्था; नई आशा

मुझे निश्चय है, कि इस बात का दुःख आप सभी को होगा, कि ऐसे अवसर पर जब जनता की ओर से अधिकतर उत्तरदायित्व का भार उठाने वाले मन्त्रिमण्डल की आवश्यकता है, तब उनका टूट जाना ठीक नहीं। किन्तु हमें विश्वास करना चाहिये, कि यह बाधा क्षणस्थायी होगी और नये विधान के अनुसार प्रान्तों में पुनः शीघ्र शासन होने लगेगा प्रान्तीय क्षेत्रों में हम नये विधान के पूर्वार्द्ध की परीक्षा उत्तरदायित्व पूर्ण निर्वाचित मन्त्रिमण्डल द्वारा कर ली है। केन्द्रीय शासन में अभी हम यथोचित सीमा तक नहीं पहुँच सके थे, कि युद्ध आरम्भ हो गया। फिर भी इस दिशा में हमारा प्रयत्न बिल्कुल रुक नहीं गया है। युद्ध के आरम्भिक दिनों में हमें अपनी शक्ति का प्रत्येक कण लगा देना होगा। हम लोगों के लिये यह बुद्धिमत्ता की बात होगी, कि सम्प्रति संघ शासन-योजना की तय्यारी स्थगित करदें। मुझे इस बात का बड़ा खेद है, कि यह तय्यारी स्थगित करनी पड़ रही है। संघ-शासन

योजना के विरुद्ध चाहे जितनी आलोचनायें की गई हों; किन्तु यदि वह आज क्रियात्मक रूप से अस्तित्व में आ गया होता तो हम अपनी सब समस्यायें हल कर लेते ।

पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य

गत सितम्बर मास से जो घटनायें हुई हैं, उन्हें आप जानते ही हैं। उनके सम्बन्ध में मैं आज कुछ न कहूँगा। आप जानते हैं, कि सम्राट् की सरकार के युद्धोद्देश्य के स्पष्टीकरण और भारत के प्रति उसकी इच्छाओं के प्रकटीकरण का अनुरोध किया गया था। सम्राट् की सरकार ने पार्लमेण्ट में और मैंने भारत में वक्तव्य निकाल कर उनका स्पष्टीकरण कर दिया है, कि भारत को हम पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य देना चाहते हैं और वह भी इस प्रकार का, जैसा वेष्ट मिनिष्टर के विधान-ग्रन्थ में है। अब रही अवधि की बात, सो हम युद्ध के बाद यथासम्भव शीघ्र १६३५ ई० के विधान की योजना को भारतीय लोकमत के परामर्श से कार्यान्वित करने के लिये तय्यार हैं। इस बीच में बड़े सम्प्रदायों के नेता समझौते के साथ-साथ आवश्यक तय्यारी कर योजना को सामञ्जस्य पूर्वक काम में लाने का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। उनके इच्छानुसार गवरनर जनरल या बड़े लाट की कार्यकारिणी कौंसिल में कुछ राजनीतिक नेता भी सम्मिलित कर लिये जा सकते हैं। इस सिलसिले में भारत के सामने जो कठिनाइयां हैं उन्हें हल करने के लिये हम चिन्तित हैं। मुझे खेद है, कि हमने इस आशय के जो आश्वासन पहले दिये थे, उनसे सन्देह पर

नहीं हुआ और उसी अनिश्चित अवस्था के कारण कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों ने पद-त्याग कर दिया और सात प्रान्तों में विधान के अनुसार शासन चलाना पड़ रहा है।

सद्विश्वास का प्रमाण

युद्ध के आरम्भ से ही सम्राट् की सरकार ने जो घोषणायें निकाली हैं; उनसे यह स्पष्ट हो जाता है, कि वह भारत के प्रति सदाकांक्षा रखती है और उसकी समस्यायें सुलझाने में सहायता देने के लिये चिन्तित है। फेडरेशन या संघ-शासन की योजना का निर्माण औपनिवेशिक स्वराज्य तक पहुँचने की सड़क के रूप में ही हुआ है। जिस समय उस योजना का निर्माण हुआ था; उस समय तक युद्ध छिड़ने का कोई भी प्रश्न हमारे सामने न था। केन्द्रीय सरकार के हाथों में बहुत व्यापक अधिकार दिये जाने वाले थे और देशी राज्यों तथा बृटिश भारत के प्रतिनिधि का आधार बहुत व्यापक बना दिया गया था। सम्राट् की सरकार ने इस दिशा में जो प्रयत्न किये हैं; उन्हें देखते हुये उसकी हार्दिक सच्चाई में कोई सन्देह नहीं हो सकता। मैं अच्छी तरह जानता हूँ, कि अनेक लोग समस्याओं का सुलझाव बहुत शीघ्रता पूर्वक और बेबुनियादी ढङ्ग पर कराना चाहते हैं। जो लोग ऐसा विश्वास करते हैं; उनकी सचाई में सन्देह नहीं करता; किन्तु जिन्हें इन महत्त्वपूर्ण समस्याओं को सुलझाना पड़ता है; वही जानते हैं, कि सीधी-सादी समस्यायें कभी-कभी विकट रूप धारण कर लिया करती हैं और अधिक जांच-पड़ताल करने पर उनमें अप्रत्याशित

कठिनाइयों की गुत्थियां दिखाई पड़ने लग जाती हैं, किसी अवस्था में हम जिस रास्ते को सीधा समझते हैं; वही लम्बा दिखाई देने लगता है।

सीधा मार्ग

सीधा मार्ग ढूंढने में भी प्राय: बहुत-सा समय व्यर्थ गँवाना पड़ जाता है। भारत की राजनीतिक समस्याओं के बारे में, तो यह बात और भी अधिक लागू होती है। हम सब जानते हैं, कि हमारे सामने कैसी कठिनाइयां हैं। हमें इसका बड़ा खेद है, किन्तु उनके अस्तित्व की उपेक्षा उनसे पिण्ड छुड़ाने का उपाय नहीं। उचित तो यह है, कि उन कठिनाइयों का मुकाबिला किया जावे और ऐसा सुलझाव ढूंढ निकाला जाये, जिससे सभी सम्बद्ध दलों का सहयोग सम्भव हो। हमें केवल एक ही राजनीतिक दल से नहीं; अनेक दलों से काम लेना पड़ रहा है। भारत की एकता के लिये हमें देशी राज्यों को भी अपनी योजना में सम्मिलित करना ही है। अल्पसंख्यकों का आग्रहपूर्ण दावा भी जारी है। मुसलमान और तालिकाबद्ध जातियों के दावे मुख्य रूप से विचारणीय हैं। उन्हें भूतकाल में जो आश्वासन दिये गये हैं; उनकी पूर्ति करना है और उनकी स्थिति की रक्षा करना है।

सब के प्रति न्याय

सब दलों के प्रबल और परस्पर-विरोधी दावों के कारण हमारे और सम्राट् की सरकार के सामने अनेक कठिनाइयां उपस्थित हो गई हैं और उन पर हमें पूर्णत: ध्यान देना होगा। हमें सभी दलों

के साथ न्याय करना है और सम्राट् की सरकार ने दृढ़ नि...
कर लिया है, कि सब के साथ यथोचित न्याय किया जावे।
विभिन्न दल-वाले मित्रों से यही अनुरोध करूँगा, कि वह ...
कोई समझौता कर लें, तो मेरा कार्य सरल हो जायगा ...
सम्राट् की सरकार भारतीय विधान के विकास का प्रश्न ...
सुलझाने में समर्थ होगी। रही ध्येय की बात, सो मैं तो ...
भी ऐसे प्रश्न पर विचार करने को तय्यार हूँ, जिसका ...
सभी दलवाले करें। समय आने पर मैं व्यक्तिगत रूप से
इसके लिये यथेष्ट सहायता देने को उद्यत मिलूँगा।

अल्पतम अवधि

सम्राट् की सरकार अन्धी नहीं है—और न हम ही ...
मूंद कर काम कर सकते हैं। औपनिवेशिक स्वराज्य तक ...
चने में जो कठिनाइयां हैं; उनको हल करते हुए वर्तमान ...
निक स्थिति से आगे बढ़ने में जो बाधायें हैं; उन्हें हम ...
तरह जानते हैं। किन्तु मैं आप को आश्वासन देना चाहता हूँ
सम्राट् की सरकार तथा मैं दोनों ही औपनिवेशिक स्वराज्य
करने की अवधि को अल्पतम करने में कोई प्रयत्न ...
रखेंगे। हमारा प्रस्ताव स्पष्ट है। अब इससे बड़े राजनीतिक
और उनके नेताओं पर जो उत्तरदायित्व आ गया है; वह
गम्भीर है और मुझे विश्वास है, कि वह उससे पूर्णतः ...
है। भूतकाल में उन्होंने मेरी सहायता की है। अब मैं उनसे
कहता हूँ, कि वह मुझे मदद दें और इस प्रकार भारत की ...

...ता हूं कि वह मुझे मदद दे और इस प्रकार भारत की ... करें। मैं वर्तमान खेद जनक वैधानिक स्थिति को ... दूर करने के लिये उन का सहयोग चाहता हूं और मुझे ... है कि भारत के सभी प्रेमी उनकी वैधानिक प्रगति की ... द्वारा दूर करने के लिये इस सहयोग को वाञ्छनीय सम... और इस अवस्था को निराशाजनक मानते हुए इस पर ... ही शोक प्रकट करेंगे।

किन्तु इससे भी भारत अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति की ओर ... भी नहीं बढ़ा। असन्तोष बढता ही गया। फर्वरी में ... हिटलर ने अपने एक भाषण में फिर कहा कि गत महायुद्ध ... समय भारत को स्वतंत्रता देने का बहाना करके इसे धोका ... गया।

इसके पश्चात भारत मंत्री ने जो भाषण किया वह अत्यन्त निराशाजनक सिद्ध हुआ क्योंकि उस से यह स्पष्ट ध्वनि निकलती ... कि भारत को अभी कोई भी अधिकार नहीं दिया जायगा।

इस भाषण का परिणाम यह हुआ कि मार्च के आरम्भ में ... में कांग्रेस कार्य समिति की जो बैठक हुई उसने समुचित ... के साथ सत्याग्रह शुरू करने की सिफारिश कर दी और ... कांग्रेस में देश को फिर आन्दोलन के पथ पर अग्रसर ... का अवसर मिल गया।

* इति *